पतञ्जलि विश्वविद्यालय की 'प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ प्रकाशन योजना' के अन्तर्गत प्रकाशित

अमितप्रभ-विरचितम्

योगशतम्

(अमितप्रभीयम्)

१०० श्लोकों में आयुर्वेद के अचूक नुस्खों का अद्भुत संग्रह

(आयुर्वेदिक चिकित्सा का १४०० वर्ष पूर्व रचित सारपूर्ण लघु ग्रन्थ)

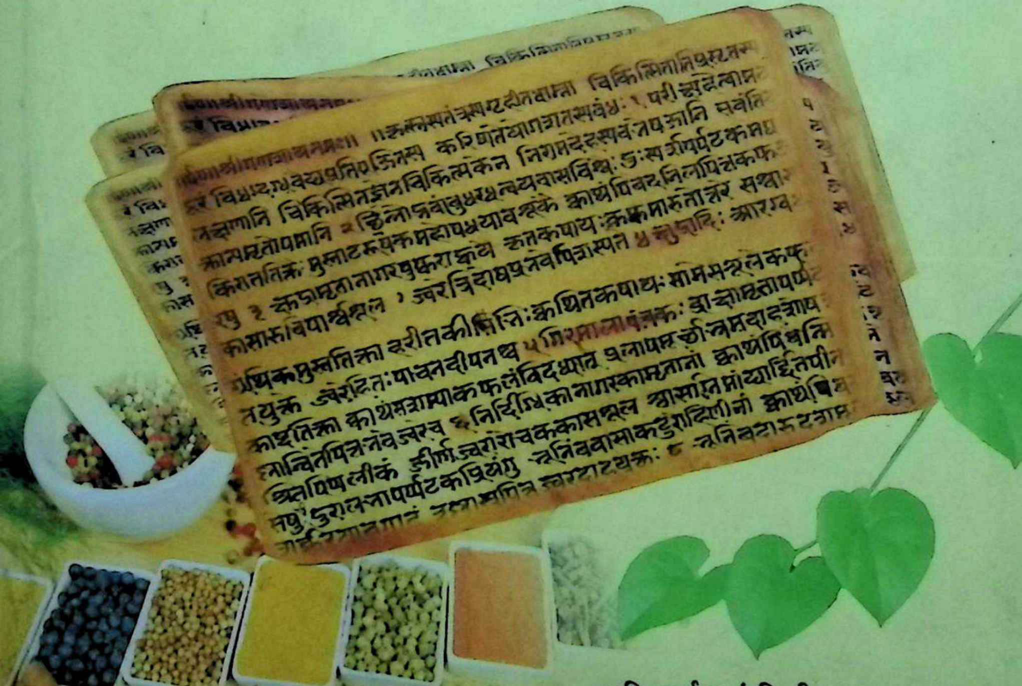

परिष्कर्ता एवं हिन्दी व्याख्याकार

आचार्य बालकृष्ण

योगशतम्

॥ ओ३म् ॥

अमितप्रभ-विरचितम्

योगशतम्

(अमितप्रभीयम्)

हिन्दी व्याख्या सहित

१०० सिद्धतम एवं अति प्रभावशाली योगों का संग्रह

(आयुर्वेदिक चिकित्सा का १४०० वर्ष पूर्व रचित सारपूर्ण लघु ग्रन्थ)

परिष्कर्ता एवं व्याख्याकार

आचार्य बालकृष्ण

दिव्य प्रकाशन

दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार

प्रकाशक **दिव्य प्रकाशन**
दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, पतञ्जलि योगपीठ
महर्षि दयानन्द ग्राम, दिल्ली-हरिद्वार राष्ट्रीय राजमार्ग
निकट-बहादराबाद, हरिद्वार-२४९४०२ (उत्तराखण्ड)

आईएसबीएन **978-81-89235-96-3**

ई-मेल **divyayoga@rediffmail.com**

वेबसाइट **www.divyayoga.com**

दूरभाष **(01334) 244107, 240008, 246737**

फैक्स **(01334) 244805**

मूल्य **१००/- (एक सौ मात्र) अजिल्द**
२४०/- (दो सौ चालीस मात्र) सजिल्द

सर्वाधिकार © **प्रकाशकाधीन,** भारतीय कॉपीराइट एक्ट के तहत इस पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री का स्वत्वाधिकार दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मन्दिर के पास सुरक्षित है। अतः पुस्तक का नाम, फोटो, कवर डिजाइन एवं प्रकाशित लेख इत्यादि को किसी भी तरह से तोड़-मरोड़कर आंशिक या पूर्ण रूप से किसी पुस्तक, पत्रिका या समाचार पत्र में प्रकाशित करने से पूर्व किसी भी व्यक्ति या संस्था के लिए प्रकाशन की अनुमति लेना अनिवार्य है। अन्यथा समस्त कानूनी हर्जे-खर्चे के जिम्मेदार होंगे। किसी भी प्रकार के मुकद्दमे के लिए न्याय क्षेत्र हरिद्वार ही होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित किसी भी प्रयोग को विशेषज्ञ वैद्य के परामर्श के बिना विधिविरुद्ध रूप में प्रयोग में लाने से होनेवाली किसी भी तरह की हानि के लिए प्रयोगकर्त्ता स्वयं जिम्मेदार होगा।

प्रथम संस्करण (श्रावण शुदि ८, सं. २०७१ वि.) ४ अगस्त २०१४ ई.
(२००० प्रतियाँ)

मुद्रक **नवशक्ति प्रिंटर्स,** दिल्ली

भूमिका

प्राचीन काल में आयुर्वेद-वाङ्मय बहुत विशाल था। ब्रह्माजी द्वारा रचित आयुर्वेद की आदिम संहिता तो एक लाख श्लोकों में थी, ऐसा वाग्भट का कथन है[१]। उस समय में लोगों का जीवन धर्मप्रधान, सात्त्विक व योगनिष्ठ था। इसी कारण मन राग-द्वेष रहित, निष्पाप, एकाग्रता-युक्त व शान्त रहता था। ऐसे में मनुष्यों की ग्रहणशक्ति प्रबल थी, इसलिए वे बड़े विशाल ग्रन्थों को भी पढ़ व समझ लेते थे। उत्तरवर्ती काल में जैसे-जैसे जीवन में धर्म एवं सात्त्विक आहार-विहार का ह्रास हुआ, वैसे-वैसे लोगों की शारीरिक क्षमता के साथ बौद्धिक क्षमता भी अल्प हो गई और बड़ी-बड़ी संहिताओं को पढ़ने में कठिनाई का अनुभव होने लगा। ऐसे काल में आयुर्वेद की प्राचीन संहिताओं का संक्षेप किया जाने लगा। चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट आदि की रचनाएं इसी कड़ी में आती हैं।

सामान्य क्षमता वाले लोगों के लिए भी आयुर्वेद का अध्ययन सुगम हो सके, एतदर्थ मध्यकाल में अनेक स्तरों पर संक्षेप किया जाने लगा। वाग्भटकृत 'अष्टाङ्गहृदय' के अनन्तर आयुर्वेद को और अधिक सरलता

---

१. आयुर्वेदं श्लोकलक्षेण पूर्वं ब्रह्माम्नासीदग्निवेशादयस्तु।
कृत्स्नज्ञेयप्राप्तसाराः स्वतन्त्रास्तस्यैकैकं नैकधाङ्गं वितेनुः।।

(अष्टांगसंग्रह, उत्तरस्थान- ५०.१३१)

पहले ब्रह्मा जी ने एक लाख श्लोकों में आयुर्वेद का उपदेश किया था; अग्निवेश आदि मुनियों ने उससे सम्पूर्ण ज्ञातव्य वस्तु साररूप में जानकर आयुर्वेद के सभी अङ्गों के पृथक्-पृथक् तन्त्र (शास्त्र/संहिताग्रन्थ) बनाए।

के साथ संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए **आचार्य रविगुप्त** ने ७वीं शताब्दी में १३०० श्लोकों की **'सिद्धसार-संहिता'**[१] रची थी, जिसमें उन्होंने प्राचीन काल की विस्तृत संहिताओं का सार समाहित करने का श्लाघनीय एवं सफल प्रयास किया था। पूर्वोक्त उद्देश्य के लिए इस काल में ऐसी बहुत सी आयुर्वेद-विषयक रचनाएं की गई थीं। उनमें अनेक अप्राप्य हैं तथा कुछ उपेक्षित रूप में जहां-तहां हस्तलेखागारों में विद्यमान हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ का परिचय-

इसी क्रम में आयुर्वेद को जनसाधारण हेतु अति सुगम बनाने के लिए ७वीं शती में ही महान् आयुर्वेदज्ञ **आचार्य 'अमितप्रभ'** द्वारा **'योगशत'** नामक अति सरल किन्तु बहुत ही सारपूर्ण ग्रन्थ की रचना की गई। इसमें 'अष्टाङ्ग-आयुर्वेद' के काय-चिकित्सा आदि अंगों से सम्बन्धित अति प्रभावशाली, सुपरीक्षित एवं सुप्रसिद्ध १०० (एक सौ) योगों (नुस्खों) का संकलन किया गया है। इसी कारण ग्रन्थ का नाम 'योगशत' रखा गया है। इस रचना में आयुर्वेद के अति संक्षिप्तीकरण के विषय में अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए 'अमितप्रभाचार्य' कहते हैं-

कृत्स्नस्य तन्त्रस्य गृहीतधाम्न-
श्चिकित्सिताद्विप्रसृतस्य दूरम्।
विदग्धवैद्य-प्रतिपूजितस्य
करिष्यते योगशतस्य बन्धः।। (योगशतम्-१)

बहुत दूर तक फैले हुए अर्थात् अति विस्तार पा चुके सम्पूर्ण चिकित्सा-शास्त्र (आयुर्वेद) से 'धाम' अर्थात् सार या सिद्धतम योगों (नुस्खों) को ग्रहण करते हुए मेरे द्वारा (अमितप्रभ द्वारा) **'योगशत'** नामक ग्रन्थ का निबन्धन

१. **सिद्धसार-संहिता** (हिन्दी अनुवाद सहित)- आचार्य बालकृष्ण, दिव्य प्रकाशन, पतञ्जलि योगपीठ ट्रस्ट, हरिद्वार-२४९४०२.प्रथम संस्करण, अगस्त २०१४ ई.

(गुम्फन) किया जा रहा है। यह ग्रन्थ अपने गुणगौरव के कारण निश्चय ही विदग्ध (विचक्षण) वैद्यों द्वारा पूजित रहेगा।

इस श्लोक में ग्रन्थकार ने अपना उद्देश्य स्पष्ट किया है कि- 'अति विस्तृत आयुर्वेद के अवगाहन एवं चिकित्सा के सुदीर्घ अनुभव के उपरान्त मैंने अत्यन्त प्रभावशाली एवं परम प्रसिद्ध योगों (नुस्खों) का संग्रह किया है'। इस संग्रह के पीछे ग्रन्थकार का उद्देश्य भी सर्वभूतहितैषी दयालु ऋषियों की परम्परा के अनुसार जगत् को आरोग्य प्रदान करना ही है। यह भाव ग्रन्थकार की ही शब्दावली में देखिए-

गुणाधिकं योगशतं निबद्ध्य
प्राप्तं मया पुण्यमनुत्तमं यत्।
नानाप्रकारामयनीडभूतं
कृत्स्नं जगत्तेन भवत्वरोगम्।। (योगशतम्- १०३)

अर्थात् गुणबहुल इस '**योगशत**' नामक रचना को निबद्ध (गुम्फित) करने से मैंने (अमितप्रभ ने) जो पुण्य प्राप्त किया है, उसके प्रभाव से नाना प्रकार के रोगों का नीड (घर) बना हुआ यह सम्पूर्ण संसार निरोग हो जाए, यही मेरी शुभकामना है।

अगाध आयुर्वेद-सागर के तलस्पर्शी एवं मर्मज्ञ विद्वान् 'अमितप्रभ' ने १०३ श्लोकों वाली इस छोटी-सी रचना में अष्टाङ्ग आयुर्वेद को बहुत ही सुन्दर, सुललित छन्दों में बड़ी कुशलता से अत्यन्त सरल एवं सरस रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें १०० सिद्धतम योग वर्णित हैं, जो चिकित्सा के निम्न ८ विभागों में विभक्त हैं-

काय-चिकित्सा (ज्वर आदि रोगों की चिकित्सा-३-४४ श्लोक), शालाक्यतन्त्र (ऊर्ध्वजत्रुरोग-चिकित्सा, नेत्र आदि के रोगों की चिकित्सा-४५-६०), शल्यतन्त्र (क्षत/व्रण आदि की चिकित्सा ६१-

६३), अगदतन्त्र/विषचिकित्सा (६४-६८), भूतविद्या (६९-७२), बालतन्त्र/कौमारभृत्य (७३-७५), रसायन-वाजीकरण (७६-७९) एवं पञ्चकर्म (८०-८४)।

इससे आगे के श्लोकों में वात, पित्त एवं कफ के कर्म, इन दोषों के प्रकोपहेतु एवं शमन के उपाय वर्णित किए गए हैं। इन्हें भी योगों में सम्मिलित करने से योगों की संख्या १०० से कुछ अधिक हो जाती है। इस विभाजन से सूचित होता है कि यहां रसायन-वाजीकरण को एक साथ रखते हुए पञ्चकर्म को अष्टम अंग के रूप में स्वीकार किया है। 'सिद्धसार-संहिता' में यद्यपि पञ्चकर्म को आठ अंगों में नहीं गिना, तथापि रसायन-वाजीकरण के अनन्तर उसे आयुर्वेद का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हुए एक पृथक् अध्याय में प्रतिपादित किया है[१]। पञ्चकर्म आयुर्वेद का अष्टम अंग है- इस आशय को प्रकट करने वाला एक क्षेपक पद्य 'योगशत' की कतिपय हस्तलिखित प्रतिलिपियों में उपलब्ध होता है-

शरीरनेत्रव्रणरोहणानि विषाणि भूतानि च बालतन्त्रम्।
रसायनं पञ्चविधं च कर्म अष्टाङ्गमायुः कथयन्ति वैद्याः।।

अर्थात् काय-चिकित्सा, नेत्र-चिकित्सा (शालाक्य तन्त्र), व्रणरोहण (शल्य-चिकित्सा), भूत-विद्या, बालतन्त्र (कौमारभृत्य), रसायन-वाजीकरण एवं पञ्चकर्म- इस प्रकार वैद्यजन आयुर्वेद को आठ अंगों में विभाजित करते हैं। इससे स्पष्ट है कि उस काल में रसायन-वाजीकरण को एकत्र समाविष्ट करते हुए पञ्चकर्म को आयुर्वेद का आठवां अंग माना जाने लगा था। इसी मान्यता के अनुसार 'योगशत' में पञ्चकर्म का विवरण एक स्वतन्त्र अंग के रूप में दिया गया है।

इसके अनन्तर तिब्बती हस्तलिखित प्रतिलिपि में उत्तरतन्त्र के अन्तर्गत चार श्लोक मिलते हैं, जिनमें बताया गया है कि कौन-सी ओषधि किस रोग

१. द्रष्टव्य- सिद्धसार-संहिता, पञ्चकर्म-विषयक ३०वाँ अध्याय।

में सर्वोत्कृष्ट होती है। उत्तरतन्त्र वाले ये चार श्लोक पीछे से जोड़े गए प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार रचनागत वैशिष्ट्य एवं शैली की सुगमता के कारण यह लघु ग्रन्थ आयुर्वेदीय वाङ्मय में लोकप्रियता के शिखर पर पहुंच गया था। परवर्ती अनेक ग्रन्थकारों द्वारा इसके उद्धरणों को बहुलता से प्रस्तुत करना इस तथ्य का प्रबल प्रमाण है। भारत में यह ग्रन्थ एक समय बहुत विख्यात था। श्रीलंका में यह आज भी सुप्रचलित है। तिब्बत एवं मध्य एशिया में भी इसकी विशिष्ट ख्याति थी। 'योगशत' का तिब्बती हस्तलेख बहुत प्राचीन माना जाता है। मध्य एशिया में उपलब्ध इसके एक खण्डित हस्तलेख से उस क्षेत्र में इसका प्रचार प्रमाणित होता है[१]। कश्मीर से केरल तक इसकी हस्तलिखित प्रतियों का उपलब्ध होना भी इसके व्यापक प्रसार को सूचित करता है।

रचयिता का परिचय एवं काल-

लोकसंग्रह अथवा प्रतिष्ठा-प्राप्ति की कामना से विमुख रहने वाले प्राचीन ग्रन्थकार प्राय: ग्रन्थ में अपना परिचय देने के विषय में उदासीन ही रहते थे। यही स्थिति योगशतकार की है। इन्होंने भी स्वयं अपना कोई परिचय ग्रन्थ के आरम्भ व अन्त में नहीं दिया है। अत: उनकी जन्मभूमि एवं निवासस्थान आदि के विषय में जानकारी उपलब्ध नहीं है। इस विषय में गवेषणा अपेक्षित है।

अनेक परवर्ती ग्रन्थकारों ने 'योगशत' एवं 'अमितप्रभ' के नाम से जो उद्धरण प्रस्तुत किए हैं, वे अमितप्रभ-विरचित 'योगशत' में उपलब्ध होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि 'योगशत' के रचयिता 'अमितप्रभ' नामक आचार्य ही थे। आयुर्वेद के महान् विद्वान् कश्मीरी आचार्य तीसटपुत्र 'चन्द्रट'

---

१. कूच के द्विभाषी हस्तलेख के टुकड़ों में 'योगशत' के छन्द संस्कृत में लिखे पाए गए हैं। इस हस्तलेख को ७वीं शती ई. या इससे भी पूर्ववर्ती माना जाता है। **ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन मेडिसन लिट्रेचर, खण्ड-II ए, पृ.-१३९;**

(१०वीं शती ई.) ने अपने ग्रन्थ 'योगरत्न-समुच्चय' में 'अमितप्रभ' के नाम से इस ग्रन्थ के अनेक उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। इससे इतना तो निश्चित है कि 'योगशत' के रचयिता 'अमितप्रभ' का काल ९वीं शती ई. से पूर्ववर्ती है। ८वीं शती ई. के ग्रन्थकारों ने भी 'योगशत' को उद्धृत किया है। अत: आयुर्वेद के इतिहास-लेखक विद्वानों द्वारा इसका काल ७वीं शती ई. माना गया है। 'योगशत' में 'अष्टाङ्गहृदय' के कतिपय पद्य यथावत् रूप में उपलब्ध हैं[१]। अत: योगशतकार का काल 'अष्टाङ्गहृदय' के रचयिता 'वाग्भट' (छठी शती ई.) से परवर्त्ती है। फ्रेंच इन्स्टीट्यूट पाण्डिचेरी के विद्वान् जान फिलियोजा इसे ७वीं शती से पूर्ववर्ती मानते हैं।

अमितप्रभ की अन्य रचनाएं-

आयुर्वेद के इतिहास-ग्रन्थों में 'अमितप्रभ' को 'चरकन्यास' का रचयिना बताया है। इससे स्पष्ट है कि इन्होंने 'चरक-संहिता' पर व्याख्या लिखी थी। इस व्याख्या का एक उद्धरण 'चक्रदत्त-रत्नप्रभाकार' निश्चलकर ने भी प्रस्तुत किया है[२]। निश्चलकर ने 'अमितप्रभ' की एक अन्य आयुर्वेदीय रचना 'चिकित्सातिशय' का भी उल्लेख किया है तथा उससे अनेक उद्धरण प्रस्तुत किए हैं[३]। यह रचना अभी तक प्रकाश में नहीं आयी है। इसकी हस्तलिखित प्रतिलिपियों का अन्वेषण अपेक्षित है।

---

१. पूतीकपत्रगजचिर्भिटचव्य- (अ.हृ.चि.- १४.३८), योगशत- २२;
जातीनिम्बपटोलपत्रकटुका- (अ.हृ.उ.- २५.६७), योगशत- ६३;
कार्पासास्थिमयूरपत्रबृहती- (अ.हृ.उ.- ५.१८), योगशत- ७०;
त्रिकुटदलकुंकुमग्रन्थिक- (अ.हृ.उ.- ५.१९), योगशत- ७१;
नतमधुकरञ्जलाक्षापटोली- (अ.हृ.उ.- ५.२०), योगशत- ७२; इत्यादि।

२. 'पूर्वोत्तरकालभेदादित्याचक्षिरे दाक्षिणात्या **इत्यमितप्रभस्य चरकन्यासे**'।
-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, अनुवासनाधिकार- ३३, पृ. ८४७

३. 'तोय इत्यादि क्षार: ख्यात: **चिकित्सातिशयाख्यग्रन्थस्यामितप्रभलिखित:**'।
- चक्रदत्त-रत्नप्रभा, अर्शश्चिकित्सा- १४, पृ. १८५

योगशत के उद्धरण-

जैसा कि पहले कहा जा चुका है- आचार्य चन्द्रट (१०वीं शती ई.) ने अपने 'योगरत्नसमुच्चय'[१] में 'योगशत' के बहुत से उद्धरण दिए हैं। इनमें कुछ तो 'योगशत' के नाम से तथा कुछ 'अमितप्रभ' के नाम से दिए गए हैं। इसी प्रकार बंगाल के महान् आयुर्वेदाचार्य चरकचतुरानन चक्रपाणिदत्त (११वीं शती ई.) ने भी अपने 'चक्रदत्त' नाम से प्रसिद्ध 'चिकित्सासार-संग्रह' नामक ग्रन्थ में ३९ पद्य 'योगशत' से उद्धृत किए हैं। 'चक्रदत्त' के व्याख्याकार 'निश्चलकर' (१२वीं शती ई.) ने 'रत्नप्रभा टीका' में 'योगशत' से उद्धृत इन पद्यों की सूचना- **'योगशतस्य'** (योगशत का पद्य) अथवा **'अमितप्रभस्य'** (अमितप्रभ का पद्य)- ऐसा कहते हुए दी है। इनका विवरण प्रस्तुत संस्करण के परिशिष्ट- २. में दिया गया है।

इसी प्रकार वृन्द के 'सिद्धयोग', सोढल के 'गदनिग्रह', त्रिमल्लभट्ट की 'बृहद् योगतरंगिणी', हर्षकीर्ति की 'योगचिन्तामणि', अनन्तकुमार के 'योगरत्नसमुच्चय' एवं अज्ञातकर्तृक 'योगरत्नाकर' आदि अन्य परवर्ती ग्रन्थों में कहीं नामोल्लेख-पूर्वक तथा कहीं बिना नाम लिए 'योगशत' के पद्य सम्मिलित किए हुए दिखाई देते हैं। इससे प्रस्तुत ग्रन्थ की लोकप्रियता एवं ख्याति सूचित होती है।

योगशत-रचयिता के विषय में मतभेद-

हस्तलेखागारों के सूचीपत्रों में 'योगशत' की जो प्रतिलिपियां निर्दिष्ट हैं, उन अधिकांश प्रतिलिपियों में रचयिता का नाम 'वररुचि' या 'नागार्जुन' लिखा है। कुछ ही प्रतिलिपियां हैं, जिनमें रचयिता का नाम 'अमितप्रभ' लिखा है। इससे सन्देह होता है कि इनमें से 'योगशत' का रचयिता कौन है?

१. **योगरत्नसमुच्चय** अभी तक अप्रकाशित है। इसका सम्पादन कार्य चल रहा है। पतञ्जलि विश्वविद्यालय हरिद्वार द्वारा यथासम्भव शीघ्र ही प्रकाशित किया जाएगा।

इस सन्देह को दूर करने के लिए पहले हमने उन हस्तलिखित प्रतिलिपियों को एकत्र कर अवलोकन किया, जिनमें रचयिता का नाम 'अमितप्रभ' लिखा था। उनके अवलोकन से विदित हुआ कि इन प्रतियों का पाठ एवं श्लोक-संख्या लगभग समान ही है। इसके उपरान्त हमने देखा कि निश्चलकर ने 'चक्रदत्त-रत्नप्रभा' में जो पद्य 'योगशतस्य' एवं 'अमितप्रभस्य' कहकर उद्धृत किए हैं, प्राय: वे सभी पद्य 'अमितप्रभ' के नाम से प्राप्त प्रतिलिपियों में उपलब्ध हैं। इससे निश्चित हुआ कि इसके रचयिता 'अमितप्रभ' ही हैं।

निश्चलकर द्वारा 'चक्रदत-व्याख्या' में समालोचित योगशत के दो पद्य ऐसे हैं , जो प्रसङ्गत: दो-दो स्थलों पर चर्चित हैं, उन्हें एक स्थल पर 'योगशतस्य' (योगशत का) कहकर सूचित किया है तथा अन्य स्थल पर 'अमितप्रभस्य' (अमितप्रभ का) कहकर सूचित किया है[१]। इससे यह स्पष्टतया सिद्ध होता है कि 'योगशत' के पद्यों को निश्चलकर कहीं ग्रन्थनाम तथा कहीं ग्रन्थकार 'अमितप्रभ' के नाम से उद्धृत करते हैं। अत: 'अमितप्रभ' ही 'योगशत' के रचयिता हैं, यह तथ्य निश्चलकर के साक्ष्य से निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है।

---

१. **'अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागै:०'**(योगशत-३०) यह 'योगशत' का पद्य 'चक्रदत्त' में पाण्डुरोगचिकित्सा के नवें श्लोक के रूप में उद्धृत है। इसे वहां निश्चलकर **'अमितप्रभस्य'** कहकर सूचित करते हैं। तदनन्तर यही पद्य मुखरोगचिकित्सा-प्रकरण के अन्तर्गत चक्रदत्त के ७३वें श्लोक- 'गृहधूमो यवक्षार:०' की व्याख्या (पृ. ७४५) में 'यदुक्तं **योगशते**' कहकर प्रस्तुत किया गया है। ऐसा ही एक अन्य श्लोक है- **जातीनिम्बपटोलपत्रकटुका-दार्वीनिशासारिवा-** (योगशत- ६३), यह 'योगशत' का पद्य 'चक्रदत्त' में व्रणशोथचिकित्सा के ७५वें श्लोक के रूप में उद्धृत है। इसकी व्याख्या करते हुए निश्चलकर पहले तो इसे **'अमितप्रभस्य'** कहकर सूचित करते हैं तथा इसी स्थल पर आगे के प्रसङ्ग में **'योगशतस्य'** कहकर भी सूचित करते हैं। इससे भी स्पष्ट है कि वे प्रस्तुत रचना के उद्धरणों को 'अमितप्रभस्य' एवं 'योगशतस्य' इन दोनों रूपों में संकेतित करते हैं।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, व्रणशोथचिकित्सा- ७५, पृ. ६०८;

निश्चलकर ने 'चक्रदत्त-रत्नप्रभा' में जिस प्रकार लगभग २५० आयुर्वेदीय ग्रन्थों के नामोल्लेख-पूर्वक उद्धरण दिए हैं, उससे प्रतीत होता है कि वे एक विलक्षण एवं बहुश्रुत आयुर्वेदाचार्य थे। उनका अध्ययन अति विशाल था तथा उनके पास ग्रन्थों का विपुल संग्रह सुरक्षित था। बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि वे सभी ग्रन्थ आज सुरक्षित नहीं बचे हैं। बहुत से प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों की जानकारी तो हमें निश्चलकर के उल्लेख से ही प्राप्त होती है। इस प्रकार आयुर्वेद-वाङ्मय के पारदृश्वा एवं विशाल पुस्तक भण्डार के धनी निश्चलकर के प्रमाण से यह तथ्य सुनिश्चित है कि 'योगशत' के रचयिता 'अमितप्रभ' ही हैं।

इसके अतिरिक्त 'योगशत' की रूपनयनकृत वैद्यवल्लभा नामक प्राचीन संस्कृत-टीका में भी 'अमितप्रभाचार्य' को ही 'योगशत' का रचयिता माना है[१]। 'गयदास' ने अपनी सुश्रुत-व्याख्या में रूपनयन नामक उक्त टीकाकार को **'अमितप्रभ-टीकाकारः'** (अमितप्रभ का टीकाकार) कहते हुए उद्धृत किया है[२]। इन पुष्ट तथ्यों के रहते इस विषय में सन्देह का कोई अवसर नहीं है कि 'योगशत' के रचयिता 'अमितप्रभाचार्य' ही हैं।

१. 'अमितप्रभाचार्यस्य तु गरसंक्षेपसञ्ज्ञया ब्रुवाणस्य अभेदवादः सम्मत इति लक्ष्यते'। योगशत-रूपनयनटीका-६७, हस्तलेखसंख्या- ५०३, प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान उदयपुर।

२. **'संवाहनं मांसरक्तत्वक्प्रसादकरं सुखम्'**-
'अमितप्रभ-टीकाकारस्तु हस्ताभ्यां शनैः शनैराहननमिति वदति'- गयदास-टीका सुश्रुतसंहिता, चिकित्सास्थान- २४.८३; गयदास का यह उल्लेख 'योगशत' के श्लोक **'स्निग्धोष्ण०'** (योगशत- ९६) में आए 'संवाहनोन्मर्द्दनम्' अंश पर 'रूपनयन-टीका' के निम्न वाक्य पर आधारित है- 'संवाहनं हस्ताभ्यां शनैराहननम्, उन्मर्द्दनं सुखमर्द्दनम्, एतेषु समाहारो द्वन्द्वः'- रूपनयनटीका- ९५, (प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर, हस्तलेखसंख्या- १५६२)

अब यह प्रश्न रह जाता है कि जब ऐसा है तो 'योगशत' की अधिकांश हस्तलिखित प्रतिलिपियों में रचयिता का नाम 'वररुचि' या 'नागार्जुन' क्यों मिलता है। तिब्बती तंजूर में भी 'योगशत' संकलित है। वहां भी रचयिता का नाम 'नागार्जुन' ही मिलता है। यह विसंगति क्यों है?

इसका समाधान यह है कि- 'योगशत' के रचयिता के रूप में 'वररुचि' या 'नागार्जुन' का नामोल्लेख तथ्याधारित नहीं है, अपितु केवल किंवदन्ती या मिथ्या प्रसिद्धि के कारण है। 'वररुचि एवं नागार्जुन'- ये दोनों क्रमश: वैदिक एवं बौद्ध परम्परा में साहित्य-सर्जनकर्त्ता के रूप में सुविख्यात एवं बहुत ही आदरणीय विद्वान् रहे हैं। अत: बहुत से ग्रन्थ ऐसे हैं, जिन्हें केवल श्रद्धावश वैदिक परम्परा में 'वररुचि' एवं 'बौद्ध-परम्परा' में 'नागार्जुन' के नाम से प्रसिद्ध कर दिया गया। यही भ्रान्तिपूर्ण स्थिति 'योगशत' के विषय में बन गई थी। यथार्थता के पक्षपाती इतिहासवेत्ता इसे स्वीकार नहीं करते हैं। अत: पूर्व-निर्दिष्ट तथ्यों के आधार पर 'योगशत' को 'अमितप्रभ' द्वारा रचित मानना ही उचित है।

'योगशत' की छन्दोयोजना-

योगशत संग्रहात्मक ग्रन्थ है। 'करिष्यते योगशतस्य बन्धः'- इस आरम्भिक वाक्य से ग्रन्थकार ने स्वयं इसे संग्रहग्रन्थ कहा है। इसमें योग तो संकलित हैं ही, साथ में कतिपय पद्य भी प्राचीन ग्रन्थों से यथावत् उद्धृत हैं। योगशत में इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, दण्डक, पुष्पिताग्रा प्रहर्षिणी, मञ्जुभाषिणी, मत्तमयूर, वंशस्थ, वसन्ततिलका, वियोगिनी, शार्दूलविक्रीडित, शालिनी एवं स्रग्धरा- इन सुललित व गेय छन्दों का प्रयोग हुआ है। दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा का एक पद्य ही अनुष्टुप् छन्द में है, परन्तु यह भी अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में अनुपलब्ध है। इस प्रकार योगशत में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है। परिशिष्ट-६ के अन्तर्गत 'योगशत' में प्रयुक्त छन्दों का विवरण लक्षण सहित दिया गया है।

'योगशत' की श्लोकसंख्या-

'योगशत' की कुछ प्राचीन प्रतिलिपियों में श्लोकसंख्या १०२ मिलती है। प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान जोधपुर (राजस्थान) से प्राप्त 'योगशत' के 'रूपनयन-टीका' सहित अखण्डित हस्तलेख (क्रमांक-१५६२) में व्याख्या सहित १०२ श्लोक उपलब्ध हैं। यह हस्तलेख प्राचीनता एवं प्रामाणिकता की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। ओ. आर. आई. कार्यवट्टम्, केरल वि. वि. तिरुवनन्तपुरम् की प्रतिलिपि (क्रमांक- ९७४३) में भी श्लोकसंख्या १०२ ही है। प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान अलवर (राजस्थान) से प्राप्त प्रतिलिपि (क्रमांक- ५२४२) तथा गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय-पुस्तकालय जामनगर से उपलब्ध हस्तलिखित प्रतिलिपि (क्रमांक- २९०) में भी यही श्लोकसंख्या है।

इन हस्तलेखों में उपलब्ध श्लोकसंख्या ही मूलसंख्या के रूप में विश्वसनीय प्रतीत होती है। क्योंकि 'योगशत' नाम से ग्रन्थ में प्रतिपादित योगों एवं श्लोकों की १०० संख्या सूचित होती है। यह संख्या ही शतक नाम से रचित ग्रन्थों में मुख्य होती है। इसके अनन्तर एक-दो या दो-तीन श्लोक पुस्तक-परिचय या उपसंहार आदि के विषय में होते हैं। अतः 'योगशत' के श्लोकों की उक्त संख्या वाली प्रतिलिपियां ही मूल रचना के निकट प्रतीत होती हैं। इनमें १०२ श्लोक वाली रूपनयनटीका-सहित प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर की प्रतिलिपि (क्रमांक-१५६२) सर्वाधिक विश्वसनीय है। प्रस्तुत संस्करण में **'वातोऽम्लतैललवणै.'** (१०१) इस श्लोक के बढ़ जाने से जोधपुर वाली उक्त प्रति से १ संख्या बढ़ गई है। इस प्रकार 'योगशत' के प्रस्तुत संस्करण की श्लोकसंख्या- १०३ है।

कालान्तर में कुछ अन्य श्लोकों के मिलने से संख्या कुछ बढ़ गई। 'प्राच्यविद्या-मन्दिर बड़ौदा' से प्राप्त सटीक हस्तलेख (क्रमांक- ३५६२) में श्लोकसंख्या ११८ है तथा इसी संस्थान से प्राप्त दूसरे सटीक हस्तलेख

(क्रमांक- ९०५९) में श्लोकसंख्या ११९ है।

'योगशत' की कुछ हस्तलिखित प्रतिलिपियों में अनुष्टुप् छन्द वाले श्लोक भी उपलब्ध होते हैं। वस्तुत: ये टीका के भाग थे, परन्तु परवर्ती काल में लिपिकरों द्वारा इन्हें मूल के साथ लिख देने से भ्रान्ति पैदा हो गई। इसी कारण इन्हें मूल ग्रन्थ का अंग माना जाने लगा। अत: 'योगशत' की ऐसी प्रतिलिपियों में श्लोकसंख्या पूर्वनिर्दिष्ट संख्या से बहुत अधिक मिलती है। 'प्राच्य विद्या संशोधनालय मैसूर' द्वारा प्रकाशित संस्करण में भी उक्त स्थिति दिखाई देती है। उसमें टीकागत अनुष्टुप् पद्यों एवं कुछ अन्य पद्यों को समाविष्ट करने से पद्यसंख्या १५७ हो गई है।

फ्रेंच इन्स्टीट्यूट पाण्डिचेरी के संस्करण में १०९ श्लोक हैं। इसमें यद्यपि कोई अनुष्टुप् छन्द वाला श्लोक नहीं है, तथापि उत्तरतन्त्र के चार पद्य ऐसे हैं[१] जो 'अमितप्रभीय' 'योगशत' की अन्य हस्तलिखित प्रतियों में नहीं मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये पद्य भी पीछे से जोड़े गए हैं। इसी प्रकार पाण्डिचेरी के इस संस्करण में और तीन पद्य ऐसे हैं[२], जो अन्य हस्तलिखित प्रतिलिपियों में प्राय: नहीं मिलते हैं। इन सात पद्यों को पाण्डिचेरी-संस्करण से हटा दिया जाए तो उसकी संख्या भी १०२ रह जाती है। हमारा अनुमान है कि मूलत: 'योगशत' की श्लोकसंख्या लगभग यही रही होगी।

'योगशत' की टीकाएं-

'योगशत' पर अनेक टीकाएं लिखी गई हैं। यह भी इसकी लोकप्रियता एवं उपयोगिता का प्रबल प्रमाण है। इस पर लिखी गई टीकाओं का विवरण इस प्रकार है-

१. 'श्रेष्ठ: पर्पटको ज्वरेषु विहित:०' ८७, 'वृषोऽस्रपित्त कुटजोऽतिसारे०' ८८ 'अक्ष्यामयेषु त्रिफलां वदन्ति०' ८९, 'शसन्ति वाजीकरणे श्वदष्ट्रा-०' ९०

२. 'द्विरुत्तरा हिङ्गुवचा सकुष्ठा०' २३, 'गोक्षुरक: क्षुरक: शतमूली०' ७७ अ 'निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव०' ८०, **(पाण्डिचेरी-संस्करण)**

१. **वल्लभा-** सनातन नामक विद्वान् ने 'योगशत' पर इस टीका की रचना की थी। इस टीका से निश्चलकर द्वारा 'चक्रदत्त-रत्नप्रभा' में लिए गए उद्धरणों से प्रतीत होता है कि यह बहुत विस्तृत एवं प्रौढ टीका थी। 'वल्लभा' नामक यह टीका अभी तक प्रकाश में नहीं आई है।

२. **कर्ममाला-** चक्रदत्त-रत्नप्रभाकार निश्चलकर ने 'सोमदास' द्वारा रची गई 'कर्ममाला' टीका के अनेक उद्धरण प्रस्तुत किए हैं तथा अनेक स्थानों पर इसे प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। यह अभी तक प्रकाश में नहीं आई है। इस टीका के हस्तलेखों का अन्वेषण अपेक्षित है। निश्चलकर ने जिस बहुमान से इसके उद्धरण प्रस्तुत किए हैं, उससे लगता है कि यह टीका बहुत ही प्रौढ एवं महत्त्वपूर्ण थी। यदि इसकी उपलब्धि होती है तो अवश्य ही आयुर्वेद-वाङ्मय की श्रीवृद्धि होगी।

३. **चन्द्रिका-** चक्रदत्त-रत्नप्रभाकार निश्चलकर ने 'योगशत' की 'चन्द्रिका टीका' से भी बहुत से उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। यह टीका भी अभी तक प्रकाश में नहीं आई है। इसकी हस्तलिखित प्रतियों का भी अन्वेषण अपेक्षित है।

४. **चन्द्रकला-** चक्रदत्त-रत्नप्रभाकार ने 'योगशत' की चन्द्रकला टीका का उल्लेख किया है तथा इसका रचयिता 'ध्रुवपाद' नामक विद्वान् को बताया है। अभी तक इसकी हस्तलिखित प्रतियों की जानकारी नहीं हो पाई है। इसका अन्वेषण अपेक्षित है।

५. **विश्ववल्लभा-** चक्रदत्त-रत्नप्रभाकार निश्चलकर ने 'योगशत' पर 'महीधर' द्वारा विरचित 'विश्ववल्लभा टीका' को भी अनेक स्थलों पर उद्धृत किया है। यह भी अभी तक प्रकाश में नहीं आई है। इसकी हस्तलिखित प्रतियों का भी अन्वेषण अपेक्षित है।

६. **रूपनयन-टीका-** 'योगशत' पर 'रूपनयन' नामक विद्वान् द्वारा रचित व्याख्या की हस्तलिखित प्रतियाँ भी भारतवर्ष के अनेक हस्तलेखागारों

में सुरक्षित हैं। इनमें से प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान जोधपुर व उदयपुर की महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन प्रतिलिपियां हमें उपलब्ध हो गई हैं। बीकानेर (राजस्थान) के 'अनूप संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थालय' में भी इसकी एक प्रतिलिपि सुरक्षित है। इनके अवलोकन से विदित हुआ कि यह 'योगशत' की प्राचीन व्याख्यान-परम्परा को समाहित करने वाली विस्तृत एवं प्रौढतापूर्ण संस्कृत व्याख्या है। हस्तलिखित प्रतिलिपि के अन्त में उपलब्ध पुष्पिका से विदित हुआ है कि इस टीका नाम 'वैद्य-वल्लभा' है। इसमें व्याख्याकार का नानाशास्त्रीय व्यापक वैदुष्य स्पष्टतया परिलक्षित होता है। इसका सम्पादन व प्रकाशन भी अभी तक नहीं हुआ था। हमारी प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ प्रकाशन योजना के अन्तर्गत इसका सम्पादन कार्य चल रहा है। पतञ्जलि विश्वविद्यालय हरिद्वार द्वारा शीघ्र ही इसका प्रकाशन किया जाएगा।

७. **पूर्णसेन-टीका-** 'योगशत' पर पूर्णसेनसूरि कृत टीका की बहुत-सी प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हैं। महाराष्ट्र के क्षेत्र में ये अधिक संख्या में मिली हैं। इसकी एक हस्तलिखित प्रतिलिपि (क्रमांक- ९०५९) प्राच्यविद्या-मन्दिर, महाराज सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय बड़ौदा से हमें उपलब्ध हुई है, इसमें 'पूर्णसेन टीका' को '**समन्तभद्र टीका**' के रूप में सूचित किया है। इस प्रतिलिपि के आरम्भिक श्लोक में समन्तभद्र का उल्लेख इस प्रकार है-

श्रीचन्द्रमौलिं प्रणिपत्य मूर्ध्ना समन्तभद्रेण जनस्य हेतोः।
श्रीपूर्णसेनैः सुखबोधनार्थं प्रारभ्यते योगशतस्य टीका।।

इसी के आधार पर इसे समन्तभद्र टीका के रूप में सूचित किया प्रतीत होता है। इसी टीका का **संवत्- १५४५ वि.** में लिपिबद्ध किया हुआ एक हस्तलेख हमें **मुनिश्री पुण्डरीकरत्नविजय जी महाराज** की सत्प्रेरणा एवं **जिनभद्रसूरि ग्रन्थभण्डार जैसलमेर दुर्ग (राजस्थान)** के अधिकारियों के

सौजन्य से प्राप्त हुआ है। यह 'योगशत' के हमें प्राप्त हुए सभी हस्तलेखों में प्राचीनतम है। इसका प्रारम्भिक श्लोक भी पूर्वोद्धृत श्लोक जैसा ही है।

इस टीका के रचयिता पू र्णसेनसूरि जैनपरम्परा के विद्वान् हैं। अत: प्रथम श्लोक की व्याख्या में टीकाकार ने चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट के साथ **'कल्याणकारक'** नामक वैद्यकशास्त्र का उल्लेख किया है, जिसके रचयिता नवीं शती वि. के जैनमुनि **'उग्रादित्याचार्य'** थे। इससे रचयिता का जैनपरम्परा से सम्बन्ध स्पष्टतया प्रतीत होता है। जैसलमेर दुर्ग से मिली 'योगशत' की उक्त प्राचीनतम प्रतिलिपि के लिखने वाले (लिपिकर) भी **'गुणनिधान'** नामक जैनमुनि थे, ऐसा इसके अन्त में स्पष्टतया लिखा है।

आयुर्वेद के इतिहास-लेखक 'योगशत' की 'पूर्णसेनकृत' एवं 'समन्तभद्रकृत' टीका अलग-अलग मानते हैं; परन्तु उपर्युक्त तथ्य के आलोक में हमें उनकी यह मान्यता भ्रान्तिपूर्ण प्रतीत होती है।

प्राच्यविद्या संशोधनालय मैसूर द्वारा उक्त टीका के साथ 'योगशत' का एक संस्करण १९८५ ई. में प्रकाशित हुआ था। इसमें भी टीका को 'पूर्णसेनकृत' लिखा है। इस संस्करण में यद्यपि अनेक हस्तलिखित प्रतिलिपियों का उपयोग किया गया था, तथापि प्राथमिक कार्य होने से मूल भाग एवं टीका भाग में अनेक त्रुटियां रह गई हैं। अन्य उपलब्ध हस्तलेखों के आधार पर इसके पुन: परिष्कृत रूप में सम्पादन की आवश्यकता है। निकट भविष्य में पतञ्जलि विश्वविद्यालय हरिद्वार द्वारा इसे परिष्कृत रूप में प्रकाशित करने की योजना है। यह टीका संक्षिप्त एवं प्रौढतापूर्ण है। इसका रचनाकाल पन्द्रहवीं शती या इससे पूर्ववर्ती होना चाहिए।

८. **नन्दलाल-टीका-** 'योगशत' पर 'नन्दलाल' नामक विद्वान् की एक 'अन्वयचन्द्रिका' टीका उपलब्ध है। इसकी एक हस्तलिखित प्रतिलिपि आनन्द आश्रम पुणे (महाराष्ट्र) के संग्रह में सुरक्षित है। इसी की एक

छायाप्रति पतञ्जलि विश्वविद्यालय पुस्तकालय, हरिद्वार में भी उपलब्ध है। यह सरल एवं संक्षिप्त टीका है।

९. **बालावबोध-** लालभाई दलपतभाई संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद (गुजरात) से प्राप्त एक हस्तलिखित प्रतिलिपि में 'बालावबोध' नामक एक सरल व संक्षिप्त टीका 'योगशत' पर विद्यमान है। हमारी जानकारी में इसका भी अभी तक कोई संस्करण नहीं निकला है।

१०. **वैकुण्ठवैद्य-टीका-** अहमदाबाद के ही उक्त संस्थान से 'योगशत' की एक प्रतिलिपि हमें प्राप्त हुई है, इसमें 'वैकुण्ठवैद्य' द्वारा विरचित एक संक्षिप्त टीका उपलब्ध है। यह भी अभी तक अप्रकाशित है।

इनके अतिरिक्त रूपनयन-टीका में अनेक स्थलों पर 'योगशत' के **'लघुभाष्य'** का उल्लेख मिलता है। यह भी अब तक प्रकाश में नहीं आया है। 'योगशत' पर बहुत-सी भाषा-टीकाएं भी मिलती हैं, जो प्रान्तीय भाषाओं में प्रायः अनुवाद जैसी हैं तथा बहुत ही संक्षिप्त हैं। भो.जे. अध्ययन-संशोधन भवन, अहमदाबाद में गुजराती अनुवाद वाली कुछ हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हैं। इसी प्रकार प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर एवं उदयपुर के संग्रह में राजस्थानी अनुवाद वाली कुछ हस्तलिखित प्रतियां विद्यमान हैं।

इस प्रकार 'योगशत' के ऊपर अनेक प्रौढ संस्कृत टीकाएं तथा बहुत-सी भाषा-टीकाएं रची गई थीं। इससे वैद्य-समाज में इसकी लोकप्रियता एवं उपयोगिता सूचित होती है। इसी कारण एक समय वैद्यों में इसका बहुत अधिक पठन-पाठन एवं चिकित्सकीय आधार-ग्रन्थ के रूप में प्रचलन हो गया था। योगशत का गौरव व प्रसिद्धि इतनी थी कि परवर्त्ती ग्रन्थकार अपने ग्रन्थों के वैसे गौरव की कामना करते थे। योगचिन्तामणि के रचयिता हर्षकीर्ति ने अपनी रचना के समापन में कामना की है कि मेरा यह ग्रन्थ 'योगशत' के समान गौरवशाली एवं विख्यात हो[१]।

---

१. यथा योगप्रदीपोऽस्ति पूर्वं योगशतं यथा। तथैवायं विजयतां योगचिन्तामणिश्चिरम्।।
(योगचिन्तामणि, पृष्ठ- २३०, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग मुम्बई)

वृद्धयोगशत-

'योगशत' का ही एक विस्तृत रूपान्तर 'वृद्धयोगशत' नाम से मिलता है। अनेक हस्तलेखागारों में इसकी हस्तलिखित प्रतियां सुरक्षित हैं। 'भो. जे. अध्ययन-संशोधन भवन, अहमदाबाद' एवं 'गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय जामनगर' से हमें इसका एक-एक हस्तलेख प्राप्त हुआ है। इसके अवलोकन से प्रतीत हुआ कि इसमें 'योगशत' में निरूपित आयुर्वेद के संक्षिप्त स्वरूप को पुनः विस्तार देकर विपुलकाय 'अष्टांग आयुर्वेद' के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। इसका सम्पादन व प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। पतञ्जलि विश्वविद्यालय हरिद्वार की 'अप्रकाशित ग्रन्थ प्रकाशन योजना' के अन्तर्गत यथासम्भव शीघ्र ही इसका प्रकाशन किया जाएगा।

अन्य विद्वानों के योगशत/योगशतक-

'अमितप्रभ' द्वारा रचित 'योगशत' के अतिरिक्त आयुर्वेद के इतिहास में कतिपय अन्य विद्वानों के 'योगशत' नामक ग्रन्थों की चर्चा भी मिलती है। चक्रदत्त-रत्नप्रभाकार निश्चलकर ने अक्षदेवीय 'योगशत' को उद्धृत किया है[१]। अन्य विद्वानों के 'योगशत' नामक ग्रन्थों के उद्धरण भी यत्र-तत्र मिलते हैं, परन्तु उनकी इतनी ख्याति नहीं हुई, जितनी अमितप्रभीय 'योगशत' की।

ग्रन्थ का अन्वेषण एवं पाठशोधन-

जब हमने देखा कि आयुर्वेद के 'योगरत्न-समुच्चय' आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थों में 'योगशत' का उल्लेख है तथा इसके बहुत से उद्धरण भी मिलते हैं,

१. यदुक्तम् अक्षदेवीययोगशते-

बृहतीपुष्करमूलभार्गीशृङ्गीत्रिफलाकटुत्रयाणाञ्च।
चूर्णं सपञ्चलवणं श्वासहरं कोष्णवारिणा पीतम्।। इति।

चक्रदत्त-रत्नप्रभा, हिक्काश्वासचिकित्सा- ९, पृ. २८९

तब हमने इसके किसी संस्करण की आशा में बहुत अन्वेषण किया, परन्तु कोई संस्करण हमारी दृष्टि में नहीं आया; तदनन्तर समीक्षात्मक सम्पादन की इच्छा से इसकी हस्तलिखित प्रतियों का संग्रह करना आरम्भ किया। इसी क्रम में प्राच्यविद्या-संशोधनालय मैसूर विश्वविद्यालय, (कर्नाटक) से १९८५ ई. में प्रकाशित इसका एक संस्करण भी मिला, जिसमें 'पूर्णसेन-टीका' भी छपी थी। इसका सम्पादन प्राच्यविद्या-संशोधनालय मैसूर में उपलब्ध ७ हस्तलिखित प्रतिलिपियों के आधार पर **श्री एच. पी. मल्लदेवरु** ने किया था। इसी के अवलोकन से ज्ञात हुआ कि फ्रेंच इन्स्टीट्यूट पाण्डिचेरी से भी १९७९ ई. में **श्री जान फिल्लियोजा** द्वारा सम्पादित इसका एक संस्करण प्रकाशित हुआ है[१]। अतः इसे भी मंगवाया गया। इसमें तिब्बती हस्तलेख के साथ मूलपाठ प्रकाशित हुआ है तथा फ्रेंच भाषा में अनुवाद भी है।

इन दोनों संस्करणों एवं पतञ्जलि विश्वविद्यालय द्वारा संकलित किए गए ७० से अधिक हस्तलेखों के अवलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पूर्ववर्त्ती दोनों संस्करणों में जो पाठदोष एवं श्लोकों की न्यूनाधिकता दिखाई देती है, उसकी समीक्षा करते हुए 'योगशत' के और अधिक परिष्कृत व प्रामाणिक सम्पादन की आवश्यकता है। साथ में राष्ट्रभाषा हिन्दी में इसका सरल अनुवाद भी अपेक्षित है। इसी संकल्प के परिणाम-स्वरूप 'योगशत' का यह संस्करण पाठकों की सेवा में समर्पित किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद सहित होने से यह संस्करण भारतवर्ष के अधिकांश भाग में ग्राह्य हो सकेगा। पूर्वोक्त दोनों संस्करण दक्षिण भारत में छपे थे एवं उनमें

१. इस संस्करण में तिब्बती हस्तलेख के साथ 'योगशतक' का मूलपाठ देवनागरी में प्रकाशित किया है तथा आगे के भाग में फ्रेंच अनुवाद भी दिया है। फ्रेंच भाषा में विस्तृत भूमिका भी दी गई है।

हिन्दी अनुवाद नहीं था। अत: उत्तर भारत के वैद्य-समाज में उनकी जानकारी व प्रसार नगण्य ही रहा। मैसूर एवं पाण्डिचेरी के संस्करणों में अनेक पाठदोष भी रह गए हैं, जिनसे अर्थावबोध बाधित हो जाता है। इन सभी न्यूनताओं का निराकरण करते हुए प्रस्तुत संस्करण अधिक प्रामाणिक व परिष्कृत रूप में तैयार किया गया है।

पाठ-शोधन के लिए भारतवर्ष के हस्तलेखागारों से संगृहीत 'योगशत' की प्रतिलिपियों में बहुत-सी मूलपाठ वाली एवं अनेक टीका-सहित प्रतियां हैं। इन सबका अवधान-पूर्वक अवलोकन करते हुए सबसे पहले मूलपाठ का शुद्ध रूप निर्धारित किया गया है। पाठशोधन करते हुए उपलब्ध पाठान्तरों को पाद-टिप्पणियों में दर्शाया गया है। जिस श्लोक से सम्बद्ध पाठान्तर हैं, उसकी संख्या के साथ पादटिप्पणी-स्थल में पाठान्तर रखे गए हैं। तदनन्तर सरल हिन्दी अनुवाद किया गया है, जिससे यह ग्रन्थ जनसामान्य एवं वैद्य-समाज के लिए अधिकाधिक उपयोगी हो सके।

इसके अतिरिक्त जो श्लोक 'योगशत' से 'चक्रदत्त' में उद्धृत किए गए थे, उन पर विद्यमान निश्चलकर की संस्कृत टीका 'रत्नप्रभाटीका' भी संकलित की है[१]। अत्यन्त प्रौढ़ होने के कारण यह टीका विद्वानों के लिए विशेष रूप से उपादेय है। चक्रदत्त में उद्धृत 'योगशत' के ३९ श्लोकों पर यह व्याख्या उपलब्ध हुई है। इससे 'योगशत' का यह संस्करण विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण बन गया है।

---

१. ये उद्धरण **चक्रदत्त-रत्नप्रभा**, सम्पादक- आचार्य प्रियव्रत शर्मा, प्रकाशक- स्वामी जयरामदास रामप्रकाश ट्रस्ट, अनाज मण्डी, जौहरी बाजार, जयपुर- ३०२००३, प्रथम संस्करण- (सं०- २०५० वि.) से लिए गए हैं।

परिशिष्ट भाग-

प्रस्तुत संस्करण के अन्त में उपयोगी परिशिष्ट रखे गए हैं। **प्रथम परिशिष्ट** में 'योगशत' की प्रतिलिपियों में अधिकपाठ के रूप में उपलब्ध श्लोकों का संकलन किया गया है। **द्वितीय परिशिष्ट** में 'योगशत' से परवर्ती ग्रन्थकारों द्वारा लिए गए उद्धरणों का विवरण दिया गया है। **तृतीय परिशिष्ट** में 'योगशत' की उन हस्तलिखित प्रतिलिपियों का परिचय दिया गया है, जो समीक्षात्मक सम्पादन हेतु हमें उपलब्ध हुईं हैं। इसके अन्तर्गत कुछ महत्त्वपूर्ण प्रतिलिपियों के कतिपय पत्रों की प्रतिकृति भी प्रस्तुत की गई है। **चतुर्थ परिशिष्ट** में 'योगशत' का मूलपाठ प्रस्तुत किया गया है, जो विद्वानों एवं छात्रों के लिए धारावाहिक रूप में पढ़ने/पारायण करने के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। **पञ्चम परिशिष्ट** में 'योगशत' में प्रयुक्त छन्दों का विवरण लक्षण सहित दिया गया है। **षष्ठ परिशिष्ट** में 'योगशत' के श्लोकों की चरणानुक्रमणिका प्रस्तुत गई की है, जो विद्वानों एवं शोधार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। **सप्तम परिशिष्ट** में उन सन्दर्भग्रन्थों की सूची दी गई है, जिन्हें भूमिका अथवा व्याख्या भाग में उद्धृत किया गया है। इसी परिशिष्ट के अन्त में **शब्दसंक्षेप-सूची** भी प्रस्तुत की गई है। इसी के अन्तर्गत पाठान्तर-प्रदर्शन में प्रयुक्त संकेतों का विवरण भी दिया गया है। इस प्रकार अनेक उपयोगी परिशिष्टों से विभूषित 'योगशत' का यह हिन्दी अनुवाद सहित संस्करण आयुर्वेद के जिज्ञासुओं, वैद्यजनों एवं शोधार्थियों के लिए अवश्य ही उपयोगी सिद्ध होगा।

सुगम हिन्दी अनुवाद सहित होने से यह ग्रन्थ सामान्य जनों एवं स्वाध्यायशील पाठकों के लिए भी बहुत उपादेय रहेगा। इसमें प्रस्तुत बहुत-से सरल एवं घरेलू योगों (नुस्खों) से आम जनता भी लाभान्वित हो सकेगी।

इस ग्रन्थ के अन्त में वात, पित्त एवं कफ के स्वरूप व कर्मों का परिचय देते हुए उनके सन्तुलन हेतु उचित आहार-विहार आदि व्यावहारिक उपाय बताए गए हैं, उन्हें अपनाकर सभी व्यक्ति स्वयं अपने आरोग्य की रक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं।

इस प्रकार यह छोटी-सी पुस्तिका आयुर्वेद की सरल चिकित्सा एवं स्वास्थ्यलाभ के व्यावहारिक उपायों की जानकारी देकर आरोग्यरक्षा में सहायक सिद्ध होगी तथा जनसामान्य में आयुर्वेद के प्रति रुचि जागृत कर ऋषियों की इस सुगम, सस्ती एवं निरापद स्वदेशी पद्धति को लोकप्रिय बनाने में उपयोगी सिद्ध होगी।

कृतज्ञता-ज्ञापन-

इस अवसर पर मैं **परम श्रद्धेय स्वामी रामदेव जी महाराज** के प्रति श्रद्धावनत हूँ, जिनके नेतृत्व में योग एवं आयुर्वेद के पुनरुद्धार एवं प्रचार-प्रसार का विराट उद्यम चल रहा है। योग एवं आयुर्वेद को जन-जन तक पहुँचाने हेतु चलाए जा रहे इस महाभियान के अंग के रूप में ही यह प्राचीन ग्रन्थोद्धार का उपक्रम भी चल रहा है। भारतीय अस्मिता एवं संस्कृति पर आघात करने वाली विदेशी शक्तियों को परास्त करने में विक्रमादित्य के समान पराक्रमशील परम श्रद्धेय स्वामीजी महाराज के मार्गनिर्देशन, सत्प्रेरणा एवं शुभाशीर्वाद से यह प्रकल्प सफलता की ओर अग्रसर है, अतः मैं आपके चरणों में श्रद्धापूर्ण प्रणाम-पुष्पाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

आयुर्वेद के अप्रकाशित प्राचीन दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों के उत्तम सम्पादन व अनुवाद के साथ प्रकाशन करने के पतञ्जलि विश्वविद्यालय हरिद्वार के इस उपक्रम को मूर्त्तरूप देने में विशेष पुरुषार्थ व सहयोग के लिए वैदिक विद्वान् **प्रो. डॉ. विजयपाल शास्त्री 'प्रचेता'** जी व उनके सहयोगियों के लिए भूरिशः धन्यवाद।

सर्वप्रथम 'योगशत' की आठ सुवाच्य महत्त्वपूर्ण प्राचीन हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ उपलब्ध कराने वाले **प्रो. डॉ. आर.टी. सावलिया**, निदेशक-भो. जे. अध्ययन-संशोधन भवन, अहमदाबाद (गुजरात) के प्रति हम हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। संशोधन-भवन से प्राप्त 'योगशत' की इन प्रतिलिपियों के आधार पर ही प्रस्तुत ग्रन्थ के संशोधन एवं समीक्षात्मक सम्पादन का कार्य आरम्भ हुआ। तदनन्तर 'योगशत' के अन्य हस्तलेखों की प्रतिकृतियां भी विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुईं। इन्हें उपलब्ध करवाने वाले निम्नलिखित सभी हस्तलेखागारों/शोधसंस्थानों के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं-

१. प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान जोधपुर (राजस्थान), प्राप्त प्रतिलिपियां- १०
२. प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान उदयपुर (राजस्थान), प्राप्त प्रतिलिपियां - ८
३. प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान अलवर (राजस्थान), प्राप्त प्रतिलिपियां - २
४. जिनभद्रसूरि जैन ग्रन्थभण्डार, जैसलमेर दुर्ग, प्राप्त प्रतिलिपियां- २
५. भो.जे. अध्ययन-संशोधन भवन, अहमदाबाद, प्राप्त प्रतिलिपिया- ८
६. हेमचन्द्राचार्य ज्ञान मन्दिर पाटण (गुजरात) प्राप्त प्रतियां-५
७. ला. द. भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर अहमदाबाद, प्राप्त प्रतिलिपियां-२
८. श्रीकैलाससागरसूरि ज्ञानभण्डार कोबा, गांधीनगर, प्राप्त प्रतिलिपियां-५
९. प्राच्यविद्या-मन्दिर, म. स. गायकवाड़ वि. वि. बड़ौदा, प्राप्त प्रतियां-५
१०. गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय जामनगर प्राप्त प्रतियां-५
११. भाण्डारकर प्राच्यविद्या-मन्दिर पूना (महाराष्ट्र) प्राप्त प्रतियां-५
१२. आनन्द आश्रम हस्तलेखागार, पूना (महाराष्ट्र), प्राप्त प्रतिलिपियां- ३
१३. डेक्कन कालेज पूना (महाराष्ट्र), प्राप्त प्रतिलिपि- १
१४. सरस्वती महल ग्रन्थालय तंजौर (तमिलनाडु) प्राप्त प्रतिलिपियां- ३
१५. फ्रेंच अध्ययन संस्थान पाण्डिचेरी, प्राप्त प्रतिलिपियां- २

१६. प्राच्यविद्या संशोधन संस्थान एवं हस्तलेखागार (ओ. आर. आई.) कार्यवट्टम् केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनन्तपुरम्, प्राप्त प्रतिलिपियां- २

१७. हस्तलेखागार, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, (हरियाणा), प्राप्त प्रतिलिपि- १

१८. रघुनाथ मन्दिर हस्तलेखागार जम्मू, प्राप्त प्रतिलिपि- १

१९. श्री यादवराव शर्मा, ग्राम- कन्दकृत्ति (गोदावरी तट), जिला- निजामाबाद, (आन्ध्रप्रदेश) का व्यक्तिगत हस्तलेखागार, प्राप्त प्रतिलिपि- १

७१

इन सभी के उदारतापूर्ण सहयोग से प्राप्त प्राचीन प्रतिलिपियों के आधार पर ही 'योगशत' का यह समीक्षात्मक व परिष्कृत संस्करण तैयार हो सका है। अतः हम पुनः इन सभी का भूरि भूरि धन्यवाद करते हैं। प्राच्यविद्या-संशोधनाय मैसूर तथा फ्रेंच इन्स्टीट्यूट पाण्डिचेरी के संस्करणों से भी सम्पादन में सहयोग मिला है, अतः इन संस्थानों के प्रति भी हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

पुस्तक के सन्दिग्ध व अस्पष्ट स्थलों के स्पष्टीकरण व अन्तिम परिष्कार में मुम्बई निवासी प्रसिद्ध **वैद्य एस. डी. (सदानन्द दिगम्बर) कामत जी** का विशेष सहयोग रहा। एतदर्थ हम उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

श्रावण शुदि ८, सं. २०७१ वि.,
(४.८.२०१४ ई.)

(आचार्य बालकृष्ण)

विषय-सूची

- ग्रन्थरचना-प्रस्तावना १
- चिकित्सा से पूर्व निदान व निरामता की आवश्यकता २

कायचिकित्सा - ज्वर आदि रोगों की चिकित्सा

ज्वरचिकित्सा के विविध योग-

- छिन्नोद्भवादि क्वाथ, दुःस्पर्शादि क्वाथ, मुस्तादि क्वाथ ३
- क्षुद्रादि क्वाथ ४
- आरग्वधादि क्वाथ ५
- द्राक्षाभयादि क्वाथ ६
- निदिग्धिकादि क्वाथ ७
- दुरालभादि क्वाथ ८
- सर्वप्रमेहनाशक फलत्रिकादि क्वाथ ९

अतिसार-चिकित्सा-

- वत्सकादि क्वाथ १०

आमयुक्त ग्रहणी रोग की चिकित्सा-

- शुण्ठ्यादि क्वाथ/चातुर्भद्रक ११

शोफ-चिकित्सा-

- पुनर्नवादि क्वाथ १२

कृमिरोग-चिकित्सा-

- मुस्तादि क्वाथ १४

अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा-

- एलोपकुल्यादि क्वाथ १५
- एलाश्मभेदकादि क्वाथ १६
- हरीतक्यादि क्वाथ १६

वात-रक्त चिकित्सा-

- वासागुडूच्यादि कषाय १७

असृग्दर, श्वासचिकित्सा-

- रसाञ्जनादि योग, भार्गी योग १८
- एरण्डादि कषाय/एरण्डसप्तक योग १८

कफवातरोग चिकित्सा-

- रुचकादि चूर्ण १९

गुल्मदराजीर्णविषूचिका चिकित्सा-

- हिंगूग्रगन्धादि योग २१
- पूतीकादि क्षार २२

श्वास-ऊर्ध्ववात-कास-अरुचि-पीनस चिकित्सा-

- शृङ्ग्यादि चूर्ण २४
- नादेयीक्षार २५

वैस्वर्य-पीनस-कफ-अरुचि चिकित्सा-

- बृहत्तालीस मोदक २७

कास, अग्निमाद्य, अर्श चिकित्सा-

- लघु तालीस मोदक २८
- समसित/समशर्कर चूर्ण २९
- क्षुधावर्द्धक सैन्धवादि योग ३०

आम-अजीर्ण-अर्श-वर्चोविबन्ध चिकित्सा-

- गुडशुण्ठी आदि योग ३१

पाण्डुरोग-चिकित्सा-

- अयस्तिल मोदक ३२

श्वास-कास चिकित्सा-

- हरीतक्यादि गुटिका ३३

छर्दि-चिकित्सा-

- मनश्शिलादि चूर्ण ३४

तृष्णाचिकित्सा-

- तृष्णाहरी गुटिका ३५

नकसीर एवं हिचकी की चिकित्सा-

- नकसीर, हिचकी नाशक योग ३६

त्वचा रोग चिकित्सा-

- सिध्महर उद्वर्त्तन ३७
- दूर्वादि प्रलेप ३८
- गण्डीरिकादि तैल ३९
- सिन्दूरादि तैल ४०
- षट्कट्वर तैल ४१

श्वास-अग्निमान्द्य-ग्रहणी चिकित्सा-

- गुडूच्यादि घृत ४२

विसर्प-मद-रक्तपित्त-कुष्ठ-गुल्म चिकित्सा-

- वृषादि (वासादि) घृत ४३
- कुष्ठ-नाशक विशिष्ट घृत/वज्रक घृत ४४
- खण्डकूष्माण्डकावलेह ४४

आनाह चिकित्सा-

- आनाहहरी वर्त्ति/फलवर्त्ति ४५

शालाक्य तन्त्र - ऊर्ध्वजत्रुरोग चिकित्सा

- शिरोरोगहर नस्य ४६
- अञ्जन-वर्त्ति ४६
- नेत्रलेप ४७
- नेत्र-आश्च्योतन ४७
- पिल्लहर योग ४८
- नेत्रलेप- १. ४८
- नेत्रलेप- २. ४९
- नेत्ररोगहर योग ४९
- कण्ठरोगहर क्वाथ ५०
- कण्ठरोगहरी गुटिका ५०
- मुखपाकहर कवलग्रह ५१
- दन्तरक्तस्राव एवं दन्तपीडा नाशक मञ्जन ५२

- कर्णपीडाहर कटुकतैल ५३
- ऊर्ध्वजत्रुरोगहर घृत ५४
- तिमिरनाशक व शिरोरोगहर घृत ५४
- तिमिरघ्न एवं ऊर्ध्वजत्रुरोगहर तैल ५५

शल्यतन्त्र

- अर्श, व्रण, गण्डमालादि में हितकर मुष्ककक्षार व क्षारतैल ५५
- व्रणरोपण एवं दाहनाशक तैल ५७
- विविध व्रणों में हितकर तैल ५७

अगद तन्त्र - विष चिकित्सा

- विषमूर्छित को चेतन करने वाला योग ५९
- आलर्क (पागल कुत्ते के) विष को दूर करने वाला योग ६०
- स्थावर-जंगम विषहर योग- १. ६०
- स्थावर-जंगम विषहर योग- २. ६१
- विष एवं कृत्या आदि का निवारक 'चन्द्रोदय' अगद ६१

भूतविद्या

- कृत्या, उन्माद, ग्रहावेश आदि का नाशक अगद ६२
- उन्माद, पिशाचावेश आदि निवारक धूप ६३
- भूतराव घृत ६४
- महाभूतराव घृत ६५

बालतन्त्र (कौमारभृत्य)

- शिशु के लिए अतिसार-नाशक क्वाथ ६६
- अतिसारग्रस्त शिशुओं के लिए हितकर क्वाथ एवं अवलेह ६७
- कासज्वर-छर्दिनाशक अवलेह ६७

रसायन-वाजीकरण

- धात्रीचूर्ण रसायन ६८
- मधुक रसायन/वाजीकरण योग ६९
- त्रिफला रसायन/वाजीकरण योग ६९
- श्वदंष्ट्रादि रसायन/वाजीकरण योग ६९

पञ्चकर्म

- कण्ठ आदि के रोगों का नाशक वमन योग ७०
- विविधरोग-नाशक विरेचन योग ७०
- वातरोगहर वस्ति योग ७१
- वातनाशक अनुवासन योग (स्नेहवस्ति) ७२
- ऊर्ध्वजत्रुरोगहर शिरोविरेचन/नस्य ७२

श्रेष्ठतम ओषधियों का निरूपण

- रोगनिवारण में श्रेष्ठतम ओषधियाँ- १. ७३
- रोगनिवारण में श्रेष्ठतम ओषधियाँ- २. ७४
- रोगनिवारण में श्रेष्ठतम ओषधियाँ- ३. ७५
- रोगनिवारण में श्रेष्ठतम ओषधियाँ- ४. ७६

त्रिदोष-प्रकोप के कारण व शमन के उपाय

- जनसामान्य हेतु दोषों के कोप-शमन का ज्ञान आवश्यक ७६
- वातप्रकोप के कारण ७७
- पित्तप्रकोप के कारण ७७
- कफप्रकोप के कारण ७८
- रोगों का मूल- त्रिदोष का असन्तुलन ७८
- वात के कर्म ७९
- पित्त के कर्म ७९
- कफ के कर्म ८०
- विविध रोगों के नामकरण का मूल ८०
- साम व्याधि के लक्षण ८१
- आम-निवारक उपाय ८१
- वातशमन के उपाय ८२
- पित्तशमन के उपाय ८३
- कफशमन के उपाय ८४
- त्रिदोष-शोधन के उपाय ८४
- दोषों के प्रकोपकाल ८५
- दोष-शमन के उपाय ८५

दैवव्यापाश्रय-चिकित्सा

- होम, उपवास ८६
- नियम, प्रायश्चित्त- ८७
- जप, व्रत, देवार्चन, द्विजार्चन, मन्त्र, बलि ८८
- स्वस्त्ययन ८९
- ग्रन्थ का उपसंहार ८९
- लोक के आरोग्य की मंगल-कामना ९०

परिशिष्ट- १.

- योगशत-हस्तलेखों में उपलब्ध अधिक पाठ ९१

परिशिष्ट- २.

- विभिन्न ग्रन्थों में योगशत (अमिप्रभीय) के उद्धरण ९६

परिशिष्ट- ३.

- योगशत की हस्तलिखित प्रतिलिपियों का परिचय १०४

परिशिष्ट- ४.

- योगशतम् (मूलपाठः) ११३

परिशिष्ट- ५.

- योगशत में प्रयुक्त छन्द १३४

परिशिष्ट- ६.

- योगशत-श्लोकचरणानुक्रमणिका १३६

परिशिष्ट- ७.

- सन्दर्भग्रन्थ-सूची एवं शब्दसंक्षेप-सूची १५३

....

अमितप्रभ-विरचितम्

यो ग श त म्

ग्रन्थरचना-प्रस्तावना

कृत्स्नस्य तन्त्रस्य गृहीतधाम्न-
श्चिकित्सिताद्विप्रसृतस्य दूरम्।
विदग्धवैद्यप्रतिपूजितस्य
करिष्यते योगशतस्य बन्धः।।१।।

बहुत दूर तक फैले हुए अर्थात् अति विस्तार पा चुके सम्पूर्ण चिकित्सा-शास्त्र (आयुर्वेद) से 'धाम' अर्थात् प्रसिद्ध योगों (नुस्खों) को ग्रहण करते हुए मुझ (अमितप्रभ) द्वारा **'योगशत'** नामक ग्रन्थ का निबन्धन किया जा रहा है। इसमें योगों का संग्रह मैंने शास्त्रज्ञान, वैद्य-परम्परा एवं अनुभव के आधार पर किया है, अतः यह ग्रन्थ अपने गुणगौरव के कारण निश्चय ही विदग्ध (विचक्षण) वैद्यों द्वारा पूजित रहेगा।

विस्तृत आयुर्वेद के आठ अंग एक अन्य श्लोक में इस प्रकार बताए गए हैं-

शरीरनेत्रव्रणरोहणानि विषाणि भूतानि च बालतन्त्रम्।
रसायनं पञ्चविधं च कर्म अष्टाङ्गमायुः कथयन्ति वैद्याः[1] ।।

काय-चिकित्सा, नेत्र-चिकित्सा, (शालाक्यतन्त्र) व्रणरोहण (शल्यतन्त्र), अगदतन्त्र (विष-चिकित्सा), भूतविद्या, बालतन्त्र (कौमारभृत्य), रसायन-वाजीकरण एवं पञ्चकर्म- ये आयुर्वेद के आठ अंग हैं। प्रस्तुत रचना में इन आठों अंगों के अन्तर्गत १०० सिद्धतम अमोघ योगों का संग्रह किया है।

---

१. पाठान्तर- अष्टाङ्गमायुः कथितं च वैद्यम्- जै.१,

चिकित्सा से पूर्व निदान व निरामता की आवश्यकता

परीक्ष्य हेत्वामयलक्षणानि
चिकित्सितज्ञेन चिकित्सकेन।
निरामदेहस्य हि भेषजानि
भवन्ति युक्तान्यमृतोपमानि।।२।।

आमय (रोग) के हेतु एवं लक्षणों की परीक्षा कर आयुर्वेदज्ञ चिकित्सक द्वारा निराम (आम रहित) शरीर वाले रोगी के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले भेषज (औषध) अमृत तुल्य बन जाते हैं।

यहाँ आयुर्वेद का मुख्य सिद्धान्त बताया गया है कि औषध-प्रयोग से पहले रोगी के शरीर को आम रहित करना चाहिए। तभी औषध-योग सफल होते हैं। एतदर्थ 'आम' (आंव) का पाचन आवश्यक होता है। आम का अर्थ है- अपक्व आहार रस। अजीर्णाशन (बिना पचे खाना) एवं अध्यशन (खाए के ऊपर पुन: शीघ्र खाना) 'आम' के मुख्य कारण हैं। ज्वर में तो आमपाचन के लिए लङ्घन (उपवास) को अत्यावश्यक माना गया है। आमपाचन के विषय में एक अन्य श्लोक इस प्रकार है-

ज्वराभिभूते षडहादनन्तरं विपक्वदोषे कृतलङ्घनादिभि:।
यद् भेषजं वैद्यवर: प्रयोजयेदसंशयं हन्त्यचिरेण रोगान्[१]।।

ज्वरग्रस्त होने पर छह दिन तक लंघन और औषधसिद्ध पेया आदि से दोषों के विपक्व होने पर वैद्यजन जिस उचित भेषज (औषध) का प्रयोग करते हैं, वह नि:सन्देह शीघ्र ही रोग को नष्ट कर देता है। अन्यत्र भी कहा है-

अक्षिकुक्षिभवा रोगा: प्रतिश्यायव्रणज्वरा:।
पञ्चैते पञ्चरात्रेण रोगा नश्यन्ति लंघनात्।। (गदनिग्रह, शालाक्य. नेत्ररोगा.- १००)

आँख तथा पेट में उत्पन्न होने वाले रोग, प्रतिश्याय, व्रण एवं ज्वर- ये पाँच रोग पाँच दिन तक लंघन करने से नष्ट हो जाते हैं।

१. यह पद्य जै.१ हस्तलिखित प्रति में ग्रन्थ के प्रथम श्लोक के रूप में उपलब्ध है।

ज्वरचिकित्सा-प्रकरण-

छिन्नोद्भवादि क्वाथ, दु:स्पर्शादि क्वाथ, मुस्तादि क्वाथ (योगसंख्या- १-३)

छिन्नोद्भवाम्बुधरधन्वयवासविश्वै-
र्दु:स्पर्शपर्प्पटकमेघकिराततिक्तै:।
मुस्ताटरूषकमहौषधधन्वयासै:
क्वाथं पिबेदनिलपित्तकफज्वरेषु ।।३।।

इस पद्य में वातज्वर, पित्तज्वर एवं कफज्वर के निवारणार्थ क्रमश: तीन योग (नुस्खे) बताए जा रहे हैं-

१. वातज्वर वाले व्यक्ति को छिन्नोद्भवा (अमृता/गिलोय), अम्बुधर (मुस्ता), धन्वयवास (दुरालभा/धमासा) एवं विश्व (शुण्ठी/सोंठ) का क्वाथ (काढ़ा) बनाकर पीना चाहिए।

२. पित्तज्वर वाले व्यक्ति को दु:स्पर्श (दुरालभा), पर्पट (पित्तपापड़ा), मेघ (मुस्ता) एवं किराततिक्त (चिरायता) का क्वाथ पीना चाहिए।

३. कफज्वर वाले व्यक्ति को मुस्ता (मोथा), आटरूष (अडूसा), महौषध (शुण्ठी) एवं धन्वयास (धमासा) का क्वाथ पीना चाहिए। इस प्रकार ये तीन योग क्रमश: वातज्वर, पित्तज्वर एवं कफज्वर को नष्ट कर देते हैं।

क्वाथ का लक्षण- द्विरष्टपलके तोये क्षुण्णं द्रव्यं पलं शृतम्।
तुर्यशेषे स निर्यूह: क्वाथो यूषोऽकृतश्च स:।।

(कैयदेव-निघण्टु, मिश्रकवर्ग- ५४)

एक पल औषध-द्रव्य को ८ पल जल में उबालें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार लें। यह क्वाथ कहलाता है। इसे निर्यूह, शृत व कषाय भी कहते हैं।

क्षुद्रादि क्वाथ (योग सं.- ४)

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः
कृतः कषायः कफमारुतोत्तरे।
सश्वासकासारुचिपार्श्वरुक्करे
ज्वरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्यते।।४।।

क्षुद्रा (छोटी कटेरी), अमृता (गिलोय), नागर (सोंठ) एवं पुष्कर (पुष्करमूल) द्वारा बनाया क्वाथ (काढ़ा) श्वास (दमा), कास (खांसी), अरुचि (भोजन के प्रति अनिच्छा) एवं पार्श्वरुक् (पार्श्वभाग/बगल या पसलियों में पीड़ा) के साथ होने वाले ज्वर में हितकर होता है। यह क्वाथ त्रिदोषजन्य ज्वर में भी प्रशस्त माना जाता है।

यह श्लोक '**चक्रपाणिदत्त**' ने अपने ग्रन्थ '**चक्रदत्त**' में 'योगशत' से उद्धत किया है। 'चक्रदत्त' के व्याख्याकार बहुश्रुत वैद्यशिरोमणि निश्चलकर इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से करते हैं-

क्षुद्रेत्यादि तस्यैव। पुष्कराह्वयः पुष्करमूलम्, पार्श्वरुजायां क्रियते, **यदुक्तमायुर्वेद(शास्त्र)सारे-**

पुष्कराह्वामृताविश्वक्षुद्राभिः सुशृतं जलम्।
हरेत् पार्श्वरुजायुक्तं कफवातोत्तरं ज्वरम्।। (क्षुद्रा बृहती)

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा-१४२, पृ.- ६२)

निश्चलकर कहते हैं कि यह श्लोक चक्रपाणिदत्त ने अपने ग्रन्थ में 'योगशत' से लिया है। श्लोक में पठित 'पुष्कराह्वय' शब्द का अर्थ 'पुष्करमूल' है। जिस ज्वर में पार्श्वरुजा (बगल में पीड़ा) होती है, वह ज्वर 'पार्श्वरुक्कर' विशेषण से कहा गया है, उसमें यह योग हितकर है। ऐसा ही योग 'आयुर्वेदसार' में भी आया है। तदनुसार- पुष्करमूल, गिलोय, सोंठ एवं बृहती (कण्टकारी) के साथ अच्छी

---

४. ०प्रभवे प्रशस्यते- इ., ०प्रभवे च शस्यते- क., ०प्रभवेऽपि शस्यते- ति.१

प्रकार उबालकर तैयार किया गया जल अर्थात् काढ़ा पार्श्व भागों में पीड़ा करने वाले कफवातप्रधान ज्वर को हर लेता है।

आरग्वधादि क्वाथ (योग सं.- ५)

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ता-
हरीतकीभि: क्वथित: कषाय:।
सामे सशूले कफवातयुक्ते
ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च।।५।।

आरग्वध (अमलतास), ग्रन्थिक (पिप्पलीमूल), मुस्ता (मोथा), तिक्ता (कुटकी) एवं हरीतकी (हरड़) द्वारा तैयार किया गया क्वाथ आम सहित शूल के साथ होने वाले कफवातप्रधान ज्वर में हितकर होता है। यह क्वाथ जठराग्नि-दीपन एवं आम (अपक्व आहार रस) का पाचन करने वाला होता है। यह योग '**आरोग्यपञ्चक**' नाम से वैद्यों में प्रसिद्ध है, ऐसा '**योगशत-वैद्यवल्लभा**' के रचयिता **वैद्यवर रूपनयन** का कथन है।

यह श्लोक भी '**चक्रदत्त**' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

आरग्वधेत्यादि **योगशतस्य**। आरग्वधं सुवर्णालुफलम् अनुलोमकत्वात्, एवं सर्वत्र। ग्रन्थिकं पिप्पलीमूलं (तिक्ता तिक्तकरोहिणी) दीपनभेदनश्चेत्यपि पाठ:, तथा च **बिन्दुसार**:-

शम्याक-कटुका-पथ्या-मुस्तक-ग्रन्थिकै: पिबेत्।
कफवातज्वरे क्वाथं सशूले च प्रभेदनम्।। इति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा-१४१, पृ. ६२)

---

५. दीपनपाचनश्च- रू., दीपनभेदनश्च- निश्चलकर-सूचितं पाठान्तरम्।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा-१४१, पृ. ६२)

द्राक्षाभयादि क्वाथ (योग सं.- ६)

द्राक्षाभयापर्प्पटकाब्दतिक्ता-
क्वाथं सशम्याकफलं विदध्यात्।
प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहशोष-
तृष्णान्विते पित्तभवे ज्वरे च।।६।।

द्राक्षा (दाख/मुनक्का), अभया (हरड़), पर्पट (पित्तपापड़ा), अब्द (मुस्ता/मोथा), तिक्ता (कुटकी) एवं शम्याक फल (अमलतास की फली) का क्वाथ बनाकर पीना चाहिए। इससे प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, शोष एवं तृष्णा (अति प्यास) से युक्त पित्तज्वर शान्त हो जाता है।

यह श्लोक भी '**चक्रदत्त**' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

द्राक्षेत्याद्य**मितप्रभस्य**। अभया हरीतकी, अब्दो मुस्तकम्, तिक्ता कटुरोहिणी, शम्याकफलमारग्वधफलम्, अस्य मज्जभागप्रक्षेप इति **चक्रदत्तः**। अयं पक्षः प्रचारी। अन्ये पुनस्तत्फलैः सह मिलित्वा क्वाथ इत्याहुः।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा- ९०, पृ.- ५०)

'चक्रदत्त' में 'द्राक्षाभया०' इस श्लोक के अनन्तर ज्वर में होने वाली जलन/अन्तर्दाह को दूर करने के लिए एक अन्य योग अमितप्रभ के नाम से दिया है-

व्युषितं धान्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम्।
अन्तर्दाहं शमयत्यचिराद् दूरप्ररूढमपि।।

व्युषितमित्यादि ख्यातं तस्यैव।

धनिए को कूटकर रात को पानी में डाल दें। प्रातः इसके जल को शर्करा मिलाकर पिएं। यह चिरकाल से बढ़े हुए अन्तर्दाह (अन्दर की जलन) को शान्त कर देता है।

६. द्राक्षामृता- क., द्राक्षाभया- आ., च-र., ज., भो. १,३,५,

टिप्पणी- यह योग 'योगशत' में नहीं है, अमितप्रभ की अन्य रचना- 'चिकित्सातिशय' में यह योग रहा होगा। इस ग्रन्थ का अन्वेषण अपेक्षित है।

निदिग्धिकादि क्वाथ (योग सं.- ७)

निदिग्धिकानागरकामृतानां
क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम्।
जीर्णज्वरारोचककासशूल-
श्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु।।७।।

निदिग्धिका (कण्टकारी/कटेरी), नागरक (सोंठ) एवं अमृता (गिलोय) का क्वाथ बनाएं। इसे पिप्पली का चूर्ण (चार माशा) मिलाकर पीना चाहिए। यह जीर्णज्वर, अरोचक, कास, शूल, श्वास, अग्निमान्द्य (मन्दाग्नि), अर्दित (मुख का लकवा) एवं पीनस (नजला) रोग को दूर कर देता है।

यह श्लोक भी '**चक्रदत्त**' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर 'चक्रदत्त-रत्नप्रभाकार' निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

निदिग्धिकेत्यादि ख्यातं **योगशतस्य**। निदिग्धिका कण्टकारिका। वातकफे क्रियते, पित्तानुबलेऽपि पिप्पलीं त्यक्त्वा मधु प्रक्षिपन्ति वृद्धाः। पुराणप्रतिश्यायेऽप्ययं योगो दृष्टफलः। अस्य सोपपत्तिकं (वैद्य)व्यवहारसिद्धप्रयोगकालं **वृन्दकुण्डोक्तं चक्रपाणिराह-** हन्तीत्यादि*। प्रातः समयेऽपि बोध्यः, यदुक्तं **बिन्दुसारे**–

निदिग्धिकामृताभ्यां तु शुण्ठ्या च सह साधितम्।
क्वाथं जीर्णज्वरार्त्तस्तु पिप्पलीचूर्णमिश्रितम्।।
श्वासकासविनाशाय मन्दाग्नेर्दीपनाय च।
अरुचेश्च निवृत्त्यर्थं प्रातरुत्थाय तं पिबेत्।। इति

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा- २००, पृ. ८३)

७. तोयं पिबे- इ., क्वाथं पिबे- ति.,

*. हन्त्यूर्ध्वगामयं प्रायः सायं तेनोपयुज्यते (चक्रदत्त-ज्वरचिकित्सा- २००)

दुरालभादि क्वाथ (योग सं.- ८)

दुरालभापर्प्पटकप्रियङ्गु-
भूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम्।
क्वाथं पिबेच्छर्करयावगाढं
तृष्णास्त्रपित्तज्वरदाहयुक्तः।।८।।

दुरालभा (धमासा), पर्प्पट (पित्तपापड़ा), प्रियंगु, भूनिम्ब (चिरायता), वासा (अडूसा) एवं कटुरोहिणी (कुटकी) के क्वाथ में शर्करा डालकर पीने से तृष्णा (अति प्यास), रक्तपित्त, ज्वर एवं दाह नष्ट हो जाते हैं। इसमें शर्करा इतनी मात्रा में डालें कि पीने में मीठा लगे। शर्करा-विषयक यह भाव श्लोकगत 'शर्करायावगाढम्' पद से प्रकट होता है। यहाँ ज्वर-चिकित्सा के साथ तृष्णाहर एवं रक्तपित्त-नाशक योग रखा है; क्योंकि ज्वर के कारण तृष्णा व रक्तपित्त भी उत्पन्न होते हैं।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

दुरालभेत्याद्य**मितप्रभस्य**। प्रियङ्गु प्रियङ्गुफलम्। भूनिम्बः किराततिक्तम्। शर्करयाऽवगाढमिति पूर्वप्रक्षेपविधिनैव, छन्दोऽनुरोधादवगाढशब्द इत्येके, व्यक्तमाधुर्यार्थमिति **चक्रः**। केचिद् दुरालभादीनामापोथितानां (निशास्थितानां जलं) शर्करामधुरं पिबेदित्याहुः। तृष्णादिभिर्व्यस्तैः समस्तैर्वा (युक्तम्) इति **वल्लभा**। प्राधान्याद् रक्तपित्त(ज्वर)हन्तृत्वं बोध्यम्, यदुक्तं **रविगुप्ते**-

तिक्तायासकभूनिम्बश्यामापर्पटवासकैः।
शृतं जलं सितायुक्तं रक्तपित्तज्वरं जयेत्।। इति। (सिद्ध.सं. ५.३४)

अत्र श्यामा प्रियङ्गुः। (चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा- ८४, पृ. ४८)

प्रमेह-चिकित्सा-

फलत्रिकादि क्वाथ (योग सं.- ९)

फलत्रिकं दारुनिशां विशालां
मुस्ताञ्च निष्क्वाथ्य निशांशकल्कम्।
पिबेत् कषायं मधुसम्प्रयुक्तं
सर्वप्रमेहेषु समुत्थितेषु।।९।। (चरक. चि.- ६.४०)

सभी प्रकार के प्रमेह रोगों के उभरने पर इस योग का सेवन करें- त्रिफला, दारुहल्दी, विशाला (इन्द्रवारुणी/इन्द्रायण), मुस्ता (मोथा)- इनका क्वाथ बनाकर पुनः उसमें हल्दी का कल्क अंशतः मिलाकर कषाय (क्वाथ) तैयार करें। कुछ शीतल होने पर इसमें थोड़ा मधु मिलाकर पान करें। इससे सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। यह योग वैद्यों में 'फलत्रिकादि क्वाथ' के नाम से प्रसिद्ध है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

फलेत्यादि **योगशतस्य**। दारुनिशा दारुहरिद्रेति **कर्ममाला वल्लभा च,** अन्ये तु हरिद्राद्वयमाहुः- दारु दारुहरिद्रा, निशा हरिद्रेत्यर्थः। तत्र पूर्वव्याख्यैव युक्ता, एकपदेनाकल्पनीयत्वात्। निशांशकल्कमिति- एषां समुदितानां फलत्रिकादीनामेको भागः, अंशशब्दोऽर्धाभिधायी, निशाया अर्धभागः कल्को यस्मिन् कषाये तत्तथा। किं वा, अंशश्चतुर्थो भाग इति **कर्ममाला। वल्लभा** तु- निशायाः क्वाथद्रव्यमध्यप्रविष्टायाः दारुहरिद्राया एवांशश्चतुर्थो भाग इति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, प्रमेह चिकित्सा-१७, पृ.५१४)

---

९. मुस्तां च- इ., मुस्तं च- च-र., ति., समुच्छ्रितेषु- क., समुत्थितेषु- इ., ति.।

अतिसार-चिकित्सा-

वत्सकादि क्वाथ (योग सं.- १०)

सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः
सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः।
सामे सशूले च सशोणिते च
चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे।।१०।।

वत्सक (कुटज की छाल), अतिविषा (अतीस), बिल्व (कच्चा बिल्व फल), उदीच्य (सुगन्धबाला) एवं मुस्ता (मोथा) के द्वारा तैयार किया हुआ कषाय (क्वाथ) आम (आंव) सहित अतिसार (दस्त) में, शूल एवं रक्तसहित अतिसार तथा पुराने अतिसार में अत्यन्त हितकर होता है। यह योग 'वत्सकादि क्वाथ' के रूप में प्रसिद्ध है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

सवत्सक इत्यादि **योगशतस्य**। वत्सकः कुटजस्तस्य त्वगिति **चन्द्रकलाटीका वैद्यप्रसारकश्च**। (कुटजस्य) फलं वर्णयति **कर्ममालाटीकादौ**, यदुक्तं **सुश्रुते**-

बिल्व-शक्रयवाम्भोद-बालकातिविषाकृतः।
कषायो हन्त्यतीसारं सामं पित्तसमुद्भवम्।। इति।

प्रायो व्यवहारश्च (त्वचा) फलेनापि (किन्तु) ज्वररक्तप्राधान्ये च (इन्द्रयव उक्तः) यदुक्तम्-

कुटजः कफपित्तास्रत्वग्दोषार्शोऽतिसारजित्।
तद्बीजं रक्तपित्तातीसारज्वरहरं परम्।। इति।।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, अतीसारचिकित्सा-६४, पृ. १३३)

१०. ०मुस्तैश्च- इ., ०मुस्तश्च- ति., च-र., सशूले च सशोणिते च- इ., सशूले सहशोणिते च- ति., च-र। चिरप्रवृत्ते विहितो- इ., चिरप्रवृत्तेऽपि हितो- च-र.।

निश्चलकर कहते हैं कि यह श्लोक 'योगशत' से लिया गया है। यहाँ वत्सक का अर्थ 'कुटज' है। इस योग में कुटज की छाल लेनी चाहिए, ऐसा 'योगशत' की 'चन्द्रकला' टीका एवं 'वैद्यप्रसारक' ग्रन्थ का मत है। 'योगशत' की 'कर्ममालाटीका' आदि में कुटज के फल का ग्रहण माना है। जैसा कि सुश्रुत में भी कहा है- बिल्व, इन्द्रयव, अम्भोद (मुस्ता), बालक (उदीच्य) एवं अतिविषा (अतीस) के द्वारा बनाया गया कषाय (क्वाथ) आम सहित पित्तजन्य अतिसार (दस्त) को नष्ट कर देता है। प्राय: कुटज की छाल एवं फल इन दोनों का ही व्यवहार देखने में आता है, किन्तु ज्वररक्त की प्रधानता में इन्द्रयव भी ग्राह्य होता है। जैसा कि कहा है- कुटज (इन्द्रजौ), कफ, पित्तरक्त, त्वचा-विकार, अर्शरोग एवं अतीसार को नष्ट कर देता है। कुटज का बीज रक्तपित्त, अतीसार एवं ज्वर को दूर करने में अति उत्तम माना जाता है।

आमयुक्त ग्रहणीरोग की चिकित्सा-

शुण्ठ्यादि क्वाथ/चातुर्भद्रक (योग सं.- ११)

शुण्ठीं समुस्तातिविषां गुडूचीं
पिबेज्जलेन क्वथितां समांशाम्।
मन्दानलत्वे सततामताया-
मामानुबन्धे ग्रहणीगदे च।।११।।

शुण्ठी (सोंठ), मुस्ता (मोथा), अतिविषा (अतीस) एवं गुडूची (गिलोय)- इन सबको समान मात्रा में लेकर क्वाथ बनाकर पान करें। यह मन्दाग्नि, निरन्तर रहने वाले आम (आंव) एवं आम सहित ग्रहणीरोग में अत्यन्त हितकर होता है। यह योग वैद्यों में 'चातुर्भद्रक' नाम से भी प्रसिद्ध है।

---

११. समुस्तातिविषां गुडूचीं- च-र., समुस्ताविषागुडूचीं- ति., इ.। समांशम्- ति., समांशाम्- इ.। उत्तरार्द्धभाग:- इ. पुस्तके इत्थं दृश्यते- 'मन्दानलत्वे सततामये च ज्वरानुसक्ते ग्रहणीगदे च'।। 'मन्दानलत्वे सततामदोषे समानुबन्धे ग्रहणीगदेषु'- भो. ६,

यह श्लोक मूलतः 'चरकसंहिता' का है वहीं से 'योगशत' एवं 'चक्रदत्त' में उद्धृत किया गया है। चक्रदत्त-रत्नप्रभाकार निश्चलकर इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से करते हैं-

शुण्ठीमित्यादि **चरकस्य**। सततामतायाम् (आमकोष्ठतायाम्) आमानुबन्धे इति पाठे ग्रहणीगदविशेषणम्। अत एवामानुषक्तम् इति **वैद्यप्रदीपे** पठ्यते। गुडूचीमिति विच्छेदपाठे तां विनापि, यदुक्तं **योगयुक्तौ–**

बिल्वघनातिविषामृतवल्ली क्वाथमथोऽमृतवल्लिविहीनम्।
यः पिबति ग्रहणीव्यथयार्त्तस्तस्य न सा भवति ग्रहणीरुक्।। इति।

तथात्रैव वक्ष्यति–'विश्वघनातिविषामुस्तक्वाथः स्यादामपाचनः' इति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ग्रहणीचिकित्सा- ७, पृ. १४४)

शोफ-चिकित्सा-

पुनर्नवादि क्वाथ (योग सं.- १२)

पुनर्नवादार्वभयागुडूचीः
पिबेत् समूत्रा महिषाक्षयुक्ताः।
त्वग्दोषशोफोदरपाण्डुरोग-
स्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफामयेषु।।१२।।

पुनर्नवा, दारु (देवदारु की छाल), अभया (हरड़), गुडूची (गिलोय) एवं महिषाक्ष (गुग्गुलु)- इन सबका क्वाथ बनाकर दो पल गोमूत्र मिलाकर पान करें। इससे त्वग्दोष (त्वचा के विकार), शोफ (सूजन), उदररोग, पाण्डुरोग, स्थौल्य (मोटापा), प्रसेक (लार टपकना) एवं ऊर्ध्वजत्रु अर्थात् गले एवं उसके ऊपर के भाग में होने वाले कफरोग नष्ट हो जाते हैं। कुछ व्याख्याकार यहां क्वाथ के स्थान पर पुनर्नवा आदि के चूर्ण का गोमूत्र के

१२. पुनर्नवां दार्व्यभयागुडूचीं पिबेत् समूत्रां महिषाक्षयुक्ताम्- इति इ. पुस्तके पाठः। उपरिगतः पाठस्तु ति.मातृकानुसारी।

साथ विधान मानते हैं। मूत्र के विधान-स्थल में गाय का मूत्र ही लिया जाता है, बछड़े या बैल का नहीं, ऐसा निर्णय इस श्लोक की आगे उद्धृत रत्नप्रभा टीका में किया है। ग्रहणीरोग-ग्रस्त व्यक्ति प्रायः शोफयुक्त होता है, अतः ग्रहणी के अनन्तर यहां शोफ-चिकित्सा का विधान किया गया है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

पुनर्नवेत्यादि **योगशतस्य।** पुनर्नवादीनां चूर्णं बोध्यम्, तथा **चागमः**- गोमूत्रेणामरदारुवर्षाभूचेतकीरजः। पिबेद् गुग्गुलुसंयुक्तं शोथोदरविनाशनम्।। इति। गोमूत्रन्तु पलद्वयं ग्राह्यम्-

सामान्येन यत्रोक्ता सा मात्रा मूत्रस्य पानतः।
अत्राग्निकोष्ठमाशङ्क्य पलद्वयं विधीयते।। इति।

स्त्रीगवीमूत्रं गृह्यते, तीक्ष्णत्वात्, लघुत्वाच्च। ननु कथमस्य तीक्ष्णत्वं लघुत्वञ्च? स्त्रीगव्याः पित्तात्मकत्वात्, यदुक्तं-'पित्तात्मिकाः स्त्रियो यस्मात् सौम्यास्तु पुरुषाः स्मृताः' इति, 'तथा चतुष्पदाः (नां) तु स्त्रियो लघुतराः स्मृताः' इति। 'घृतसैन्धवहिङ्गुभ्यां वार्षे बास्ते चतुर्गुणे' **इति**- अत्र च 'वार्ष' इति जातिपरं कृत्वा स्त्रीगवीमूत्रमेव तीक्ष्णत्वात् (लघुत्वाच्च) स्मृतिशास्त्रोक्तमेध्यत्वाच्चेति **वाप्यचन्द्रः।** अत्र त्वन्ये पुंल्लिङ्गनिर्देशादेव नेच्छन्ति, इच्छन्ति च गोमूत्रमात्रश्रुताविति, युक्तमिदं, स्त्रीगवीनां मूत्रे (लाघवं) गौरवञ्च शुक्रावयवसंयोगात्। नपुंसकानाममाङ्गल्यान्न तदादेयमिति **भट्टारपादा** अपि। स्त्रीजातेरपि शुक्रावयवसमवायाद् गौरवमस्तीति मत्वा द्वयोरपि ग्रहणमाह **विष्णुवर्मा।** ऐतिह्याद् याज्ञिकानां व्यवहारात् स्त्रीजातीनामिति **चन्द्रिकाकारः।** **विष्णुवर्मणस्तु** पक्षो न प्रमाणमर्हतीति, स्त्रीमूत्राणां स्वत एव लाघवात्। तज्जातञ्च तद्वत् प्रायः कारणार्थाभिप्रायित्वात् कार्यस्य सहजसिद्धञ्च लाघवम्, यदाह **चरकाचार्यः**- 'गौरवं लिङ्गसामान्ये पुंसां स्त्रीणान्तु लाघवम्' इति। **सुश्रुताचार्योऽपि**- 'स्त्रियश्चतुष्पादेषु विहगेषु च' इति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, उदरचिकित्सा- ५१, पृ.-४५२)

कृमिरोग-चिकित्सा

मुस्तादि क्वाथ (योग सं.- १३)

मुस्ताखुपर्णीफलदारुशिग्रु-
क्वाथः सकृष्णाकृमिशत्रुकल्कः।
मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान्
कृमीन्निहन्यात् कृमिजांश्च रोगान्।।१३।।

मुस्ता (मोथा), आखुपर्णी (मूषाकानी), फल (त्रिफला), दारु (दारुहल्दी) एवं शिग्रु (सहिजन) का क्वाथ बनाएं। इसमें उचित मात्रा में कृष्णा (पिप्पली) एवं कृमिशत्रु (विडंग) का कल्क मिलाएं। इस प्रकार तैयार किया गया यह योग मुख एवं मलद्वार अथवा बाह्य एवं आभ्यन्तर- इन दोनों मार्गों में चिरकाल से बढ़े हुए कृमियों एवं कृमिजन्य अन्य रोगों को नष्ट कर देता है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

मुस्ताखुपर्णीत्यादि **ख्यातममितप्रभस्य**। आखुपर्णी मूषकपर्णीति (**वल्लभा**), दन्ती (भेद इत्यर्थः), द्रवन्तीत्यन्ये। फलं मदनफलमिति केचित्, तन्न, यदाह **रविगुप्तः**-

शिग्रुदार्व्याखुपर्ण्यब्दत्रिफलाभिः शृतं जलम्।
कृष्णाविडङ्गकल्काढ्यं पिबेत् क्रिमिनिवारणम्।। इति।

(सिद्ध. सं- ६.७६)

तस्मात् फलं त्रिफला, क्रिमिशत्रुर्विडङ्गसारः। क्रिमिजान् रोगान् क्रिमिजनितदोष-कोपोद्भवान्, ते च रोगाः ज्वरादयः एव, यदाह **रविगुप्तः**-

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः।
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च सञ्जातक्रिमिलक्षणम्।। इति।(सिद्ध.सं.-६.७४)

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, क्रिमिचिकित्सा-४, पृ. २१८)

---

१३. निहन्ति- इ., निहन्यात्- ति.।

अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा-

एलोपकुल्यादि क्वाथ (योग सं.- १४)

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेद-
कौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः।
क्वाथं पिबेदश्मजतुप्रधानं
सशर्करे साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे।।१४।।

एला (छोटी इलायची), उपकुल्या (पिप्पली), मधुक (मुलेठी) अश्मभेद (पाषाणभेद/पत्थरचट्टा), कौन्ती (रेणुका/ निर्गुण्डीबीज), श्वदंष्ट्रा (गोखरू), वृषक (वासा/अड़ूसा), उरुबूक (एरण्डबीज)- इनसे सिद्ध किए क्वाथ में शिलाजीत मिलाकर पीने से अश्मरी (पथरी) एवं शर्करा (छोटे टुकड़ों) से युक्त मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है। अश्मरी (पथरी) जब वात के प्रभाव से छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त हो जाती है, तब उसे शर्करा कहते हैं।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

एलेत्यादि **योगशतस्य**। उपकुल्या पिप्पली, कौन्ती रेणुका, वृषो वासकः। प्रगाढमिति अवश्यप्रक्षेपार्थः, तद्योगात् परमुत्कृष्टशक्तीदं, नान्यथेति तात्पर्यार्थः। अन्यत्रोन्मिश्र इत्येतावन्मात्रोक्तः, तथा **चायुर्वेदसारः**-

एलोरुबुकणायष्टीकण्टीकौन्त्यश्मभिद्वृषैः।
क्वाथः शिलाजतून्मिश्रोऽश्मरीसकृच्छ्रजिद् भवेत्।। इति।

अयं योगो वासामन्तरेणापि, यदुक्तं, **रविगुप्ते**–

श्वदंष्ट्रैरण्डकौन्त्येलायष्टीकृच्छ्राश्मभेदिनी।
क्वाथेनाश्मजतु क्षिप्रं शर्कराश्मरिबन्धजित्।। इति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा-अश्मरीचिकित्सा- ३२, पृ.५०५)

एलाश्मभेदकादि क्वाथ (योग सं.- १५)

एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां
चूर्णानि तण्डुलजले लुलितानि पीत्वा।
यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य सम्यग्-
आसन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री।।१५।।

एला (छोटी इलायची), अश्मभेदक (पाषाणभेदक/पत्थरचट्टा), शिलाजीत एवं पिप्पली- इनका चूर्ण तण्डुल-जल में घोलकर पीने से अथवा उक्त ओषधियों के चूर्ण को गुड़ के साथ चाटने से आसन्नमृत्यु (जिसकी मौत निकट ही है, ऐसा) मूत्रकृच्छ्री (मूत्रकृच्छ्र रोग से ग्रस्त) व्यक्ति भी जीवन पा लेता है- अर्थात् शीघ्र ही स्वास्थ्यलाभ कर लेता है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। अत एव वहां चक्रदत्तरत्नप्रभाकार निश्चलकर कहते हैं- **एलेत्यादि ख्यातं योगशतस्य।** (चक्रदत्त-रत्नप्रभा, मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा- २४, पृ.४९४)

टिप्पणी- यह पद्य इस संस्करण के लिए आधारभूत मातृकाओं में निर्धारित हस्तलिपि ति. मातृका में अनुपलब्ध है, किन्तु पाण्डिचेरी-संस्करण में यह उपलब्ध है तथा चक्रदत्त-रत्नप्रभा में भी इसे योगशत का पद्य बताया है। अतः इसे प्रस्तुत संस्करण में रखा गया है।

हरीतक्यादि क्वाथ (योग सं.- १६)

हरीतकी-गोक्षुर-राजवृक्ष-
पाषाणभिद्धन्वयवासकानाम्।
क्वाथं पिबेन्माक्षिकसम्प्रयुक्तं
कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे।।१६।।

हरीतकी (हरड़), गोक्षुर (गोखरू), राजवृक्ष (अमलतास), पाषाणभिद् (अश्मभेदक/पत्थरचट्टा), धन्वयवास (दुरालभा/धमासा)- इनका क्वाथ

बनाएं। शीतल होने पर इसमें उचित मात्रा में मधु मिलाकर पान करें। इससे दाह (जलन) एवं पीड़ासहित मूत्रकृच्छ्र (कष्टपूर्वक मूत्र उतरना) तथा विबन्ध (मूत्र की रुकावट) नष्ट हो जाते हैं।

यह श्लोक भी चक्रपाणिदत्त ने अपने ग्रन्थ '**चक्रदत्त**' में उद्धृत किया है। 'चक्रदत्त' के व्याख्याकार निश्चलकर इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से करते हैं-

हरीतकीत्यादि **योगशतस्य**। राजवृक्षः स्वर्णाहुलिस्तस्य फलम्। पाषाणभित् पाषाणभेदी। (चक्रदत्त-रत्नप्रभा, मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा-७, पृ.- ४९१)

वात-रक्तचिकित्सा

वासागुडूच्यादि कषाय (योग सं.- १७)

वासा-गुडूची-चतुरङ्गुलाना-
मैरण्डतैलेन पिबन् कषायम्।
क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं
जयेदसृग्वातभवं विकारम्।।१७।।

वासा (अडूसा), गुडूची (गिलोय) एवं चतुरङ्गुल (अमलतास की फली) के क्वाथ को उचित मात्रा में एरण्ड-तैल मिलाकर पीने से क्रमशः सभी अङ्गों में विद्यमान असृग्वात (वातरक्त) रोग पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है। 'चक्रदत्त-रत्नप्रभा' में क्वाथ से एरण्ड तैल की मात्रा द्विगुण बताई गई है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

वासेत्यादि ख्यातं **योगशतस्य** । चतुरङ्गुलस्य फलं द्विगुणञ्चैरण्डतैलम्-

अमरामृगपतिवदनं नरपतिवदनस्य सङ्गतं क्वथितम्।
द्विगुणारितैलमिश्रं शमयति वातासृजं घोरम्।। इति।।

परमत्र क्वाथमपेक्ष्य रुबुतैलं तद्द्विगुणम्, न त्वेकक्वाथ्यद्रव्यमपेक्ष्येत्याहुः, युक्तञ्चेदम्, अन्यत्रापि विशेषानभिधानात्। यदुक्तम**मृतमालायाम्**-

शम्याकामृतवासानामेरण्डस्नेहसंयुतम्।
पीत्वा क्वाथमसृग्वातं क्रमात् सर्वाङ्गजं जयेत्।। इति।।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, वातरक्तचिकित्सा- ६, पृ. ४१०)

असृग्दर, श्वास चिकित्सा-

रसाञ्जनादि योग, भार्गी योग (योग सं.- १८-१९)

रसाञ्जनं तन्दुलकस्य मूलं
क्षौद्रान्वितं तण्डुलतोयपीतम्।
असृग्दरं सर्वभवं निहन्ति
श्वासं च भार्गी सह नागरेण।।१८।।

रसाञ्जन एवं तन्दुलकमूल (चौलाई की जड़) को पीसकर तण्डुल-जल (चावल के धोवन) के साथ मधु मिलाकर पान करें। यह योग सब प्रकार के असृग्दर अर्थात् स्त्रियों के रक्तप्रदर रोग को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार नागर (शुण्ठी) के साथ भार्गी (भारंगी) का सेवन करने से सभी प्रकार का श्वास रोग नष्ट हो जाता है।

एरण्डादि कषाय/एरण्ड सप्तक योग (योग सं.- २०)

एरण्ड-बिल्व-बृहतीद्वय-मातुलुङ्ग-
पाषाणभित्त्रिकटमूलकृतः कषायः।
सक्षारहिङ्गुलवणोरुबुतैलमिश्रः
श्रोण्यंस-मेढ्र-हृदय-स्तनरुक्षु पेयः।।१९।।

एरण्ड, बिल्व, दोनों प्रकार की बृहती (कण्टकारी)- छोटी व बड़ी, मातुलुङ्ग (निम्बू), पाषाणभिद् (अश्मभेदक/ पत्थरचट्टा) एवं त्रिकट/

---

१९. मातुलिङ्गः- ति., मातुलुङ्ग- इ., च-र.। श्रोण्यूरु.- इ., ति., श्रोण्यंस.- च-र., भो. ६।

त्रिकण्ट/गोखरू के मूल का क्वाथ बनाएं। इसमें उचित मात्रा में यवक्षार, हिङ्गु (भुनी हींग) एवं सैन्धव लवण मिलाएं; तदनन्तर इसमें उरुबुतैल (एरण्डतैल) मिलाकर पान करें। इससे कमर, कंधा, लिंग, हृदय एवं स्तनों के रोग नष्ट हो जाते हैं।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

एरण्डेत्यादि **योगशतस्य**। पाषाणभित् पाषाणभेदी, त्रिकण्टः गोक्षुरकः, अत्र यौगिकत्वात्। लवणं सौवर्चलमित्येके, तन्न, यदाहुः **नागार्जुनपादा एव योग-मञ्जर्याम्-**

बृहत्यौ बिल्वमेरण्डो मातुलुङ्गं त्रिकण्टकम्।
पाषाणभेदकं तैस्तु क्वाथो हिङ्गुसमायुतः।।
सैन्धवक्षारसंयुक्तस्तैलेनैरण्डजेन वा।
पीतो निहन्ति साटोपं सामवातं विशेषतः।
श्रोण्यंसमेढ्रहृदयस्तनरोगेषु शस्यते।। इति।

अयं योगः सामवाताधिकारे **चन्द्रटेन** लिखितः। अतस्तत्रापि कर्त्तुं युज्यते।। इति।। (चक्रदत्त-रत्नप्रभा, शूलचिकित्सा-५४, पृ.सं. ४४६)

कफवातरोग चिकित्सा-

रुचकादि चूर्ण (योग सं.- २१)

चूर्णं समं रुचक-हिङ्गु-महौषधानां
शुण्ठ्यम्बुना कफसमीरणसम्भवासु।
हृत्पार्श्वपृष्ठजठरार्त्तिविसूचिकासु
पेयं तथा यवरसेन च विड्-विबन्धे।।२०।।

---

२०. ०मुष्णाम्बुना.- ज., शुण्ठ्यम्बुना- ति., इ., च-र.।

रुचक (सौवर्चल लवण/सोंचर नमक), हिङ्गु (हींग) एवं महौषध (शुण्ठी) के चूर्ण को शुण्ठीजल (सोंठ के क्वाथ) के साथ पीना चाहिए। इससे कफवातजन्य रोग नष्ट हो जाते हैं। इस योग के सेवन से हृदय, पार्श्व, पीठ एवं उदर के रोग तथा विषूचिका (हैजा) भी नष्ट हो जाता है। विड्-विबन्ध (मलबद्धता/कब्ज) होने पर इस योग का यवरस (जौ के क्वाथ) के साथ सेवन करना चाहिए। इससे विड्-विबन्ध रोग दूर हो जाता है। उष्ण जल के साथ भी इसे लिया जा सकता है। 'योगरत्नसमुच्चय' में 'चन्द्रट' ने 'नागार्जुन' का उद्धरण देते हुए उष्ण जल से लेने का विधान किया है। यह उल्लेख आगे उद्धृत निश्चलकर-टीका में द्रष्टव्य है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

चूर्णमित्यादि **योगशतस्य**। रुचकं सौवर्चलम्। रुचकादीनां समं तुल्यं चूर्णं हिंग्वष्टकादिवदिति **सनातनः**। समं सार्धमिति **कर्ममाला**। अत एव **चक्रो**ऽपि वक्ष्यति- 'समं शुण्ठ्यम्बुने'त्यादि। **वृन्दस्त्वाह**-

क्वाथेन चूर्णपानं यत्तत्र क्वाथप्रधानता। प्रवर्त्तते तु तेनात्र चूर्णपेक्षी चतुर्द्रवः।।
हिङ्गुनः स्वल्पमानोक्तिः समशब्दे सहार्थता।। इति।

ननु क्वाथस्यात्र कथं प्राधान्यम्? क्वाथेन चूर्णपलादिति चेत्, एवं तर्हि तस्यैव प्राधान्यम्, प्राधान्यं तु चूर्णस्य पेयत्वात्, सहार्थे तृतीयायोगादपि क्वाथस्यैवाप्राधान्यमापतितम्। सत्यम्, किन्त्वयमाशयो **वृन्दस्य**-'पातव्यश्च चतुर्द्रवः-' इत्येषा परिभाषात्र न प्रवर्तते, अन्यत्र कट्वरोदक-काञ्जिक-मस्तुकादौ चरितार्थत्वात्। कात्र युक्तिः? अत्रोत्तरं क्वाथेन चूर्णेत्यादि। को भावः? क्वाथकरणं क्वाथ्यद्रव्यसापेक्षम्, क्वाथ्यद्रव्यञ्चोत्तमपुरुषोपेक्षम्, अतस्तद्द्रव्यं पलत्रिकर्षार्धपलमानमुत्सर्गतो व्यवस्थितम्। तदपेक्षश्च क्वाथः, स चोत्तमपुरुषाद्यभिप्रायात् व्याधिचिकित्सोक्तेरभाव इति विपक्षे दण्डदर्शनात्, यथावस्थितभागावशिष्टक्वाथप्रयोगात् क्वाथप्रधानतेत्यभिप्रायः। अयञ्च सुप्रसिद्धवृद्ध**वैद्यव्यवहार** एवायुर्वेद-

सिद्धान्तसिद्धसन्तानक्रमेणावस्थितो लिखितो **वृन्देन**, न च किञ्चिद् दोषलिङ्गं स्पृशति, ततश्च 'प्रक्षेपः पादिकः क्वाथ्यात्' इत्यस्य विषयो भविष्यति। मैवम्, शुण्ठीक्वाथश्चतुर्भागविशिष्ट इति युक्तोऽयं पक्षः। **आयुर्वेदसारे** हि समशब्दो नास्ति, भागानुक्तो तुल्यार्थस्य लब्धत्वात्, तथाहि-

शुण्ठीरुचकहिङ्गूनां चूर्णं विश्वाम्बुना पिबेत्।
कफवातोद्भवे शूले बीजपूररसेन च।। इति।।

उष्णोदकेनापीदं क्रियते, यदुक्तं **चन्द्रटे नागार्जुनीयोक्तम्**-

सौवर्चलं हिङ्गु सनागरञ्च चूर्णीकृतं पीतमशीततोयैः।
हृत्पृष्ठकोष्ठान्तरबस्तिशूलं प्रणाशयेदेतदतिप्रवृद्धम्।। इति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, शूलचिकित्सा- ५०, पृ. ४४५)

गुल्मोदराजीर्णविषूचिका चिकित्सा-

हिंगूग्रगन्धादि योग (योग सं.- २२)

हिंगूग्रगन्धा-विड-शुण्ठ्यजाजी-
हरीतकी-पुष्करमूल-कुष्ठम्।
भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं
गुल्मोदराजीर्ण-विषूचिकासु।।२१।। (च.चि.- २६.२२)

हिङ्गु (हींग), उग्रगन्धा (वचा), विड लवण, शुण्ठी (सोंठ), अजाजी (जीरा), हरीतकी (हरड़), पुष्करमूल एवं कुष्ठ (कूठ)- इनको उत्तरोत्तर एक-एक भाग की अधिकता के साथ लेते हुए चूर्ण बनाएं। भाव यह है कि चूर्ण बनाते समय यदि हींग १० ग्राम हो तो वचा २० ग्राम, विड लवण ३० ग्राम, शुण्ठी ४० ग्राम, जीरा ५० ग्राम, हरड़ ६० ग्राम, पुष्करमूल ७० एवं कूठ ८० ग्राम होना चाहिए। इस प्रकार भागोत्तर अर्थात् एक-एक भाग बढ़ाते

२१. विसूचिकासु- ति., च-र., विषूचिकासु- इ.।

हुए चूर्ण बनाना चाहिए। इस चूर्ण के सेवन से गुल्म, अजीर्ण एवं विषूचिका (हैजा) रोग नष्ट हो जाता है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

हिंग्वित्यादि **चरकस्य**। अस्य त्वर्ध एवोत्पादाद् वातादुक्तः। भागशब्दोऽत्र समुदायवाची, तेन एको भागः, द्वौ वचाया इत्यादीति **वल्लभा। आयुर्वेदसारे**ऽपि-

हिङ्गुमुग्रां विडं विश्वं जीरं पथ्यां सपुष्करम्।
कुष्ठं च भागसंवृद्धं पिबेद् गुल्मोदरापहम्।।

अत एव **वृद्धवैद्या** उष्णोदकं पानार्थमुपदिशन्ति। भागोत्तरं भागवृद्धमित्यर्थः। भागशब्दश्चांशवाचीति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, गुल्मचिकित्सा- ४७, पृ. ४७७)

पूतीकादि क्षार (योग सं.- २३)

पूतीकपत्र-गजचिर्भिट-चव्य-वह्नि-
व्योषं च संस्तरचितं लवणोपधानम्।
दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तुयुतं प्रयोज्यं
गुल्मोदर-श्वयथु-पाण्डु-गुदोद्भवेषु।।२२।।

पूतीकपत्र (करञ्जपत्र), गजचिर्भिट (इन्द्रवारुणी/गड़तुम्बा), चव्य (चविका), वह्नि (चित्रक), व्योष (त्रिकटु)- इन्हें संस्तरचित करते हुए, तह जमाते हुए प्रत्येक पर लवण का लेपन करें; तदनन्तर उन्हें जलाकर बनी भस्म का दधिमस्तु (दही के ऊपर तैरने वाले पानी) के साथ सेवन करें। इससे गुल्म, उदररोग, श्वयथु (सूजन), पाण्डु (पीलिया) एवं गुदोदर रोग नष्ट हो जाते हैं। यह योग वैद्यजनों में **पूतीकादि क्षार** नाम से प्रसिद्ध है।

२२. गुदोदरेषु- मै., गुदोद्भवेषु- ति., इ., च-र.।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

पूतीकेत्यादि **योगशतस्य।** पूतीको लालाकरञ्जोऽस्य पत्राणि। गजचिर्भिटो गोरक्षकर्कटी, वह्निश्चित्रकः। पूतीकपत्रादिभिः संस्तरं दत्त्वा तत्र लवणं सैन्धवं दग्धव्यम्। लवणं पूतीकपत्रादिसमम्, **सुश्रुत**वाताधिकारे पत्रलवणे **गयदास-कार्त्तिकाभ्यां** तथा व्याख्याततत्वात्। लवणं सैन्धवं विद्यादिति यद्यप्युच्यते तथाप्यस्य योगस्य वातजयार्थत्वात् प्रचुरलवणस्यापि वातहरत्वाद् ग्रहणम्। अत एवंविधयोगे प्रचुरं लवणमपि क्रियते। सैन्धवं प्रक्षेपे पेयादिसंस्कारे लवणशब्देन बोध्यमित्युत्कृष्टलवणत्वादिति **गुरुग्रन्थः।** अन्ये तु पञ्चलवणमित्याहुः, वातहन्तृत्वात्। एवमेतत् सर्वम्, **यदुक्तमायुर्वेदसारे-**

चिरिबिल्वदलव्योषमैन्द्री-चव्याग्निसैन्धवैः।
संस्तरे निचितं दग्ध्वा गुल्मघ्नं मस्तुना पिबेत्।। इति।।

कर्ममालाप्येतादृशी। (चक्रदत्त-रत्नप्रभा, गुल्मचिकित्सा-४०, पृ.४७५)

इसकी व्याख्या करते हुए निश्चलकर कहते हैं कि प्रस्तुत श्लोक भी 'योगशत' से लिया गया है। इसमें प्रयुक्त ओषधियों का विवरण देते हुए वे कहते हैं कि यहाँ 'पूतीक' का अर्थ 'लालाकरञ्ज' है। इस योग में इसके पत्रों का प्रयोग होता है। 'गजचिर्भिट' का अर्थ 'गोरक्षकर्कटी' (बड़ी इन्द्रवारुणी) है। वह्नि शब्द से यहाँ चित्रक समझना चाहिए। इस योग में पूतीकपत्र आदि से संस्तर बनाना चाहिए- अर्थात् इनकी तह बनाकर ऊपर लवण रखकर सभी को जला देना चाहिए। लवण की मात्रा पूतीकपत्र आदि के समान होनी चाहिए। भाव यह है कि पूतीकपत्र आदि सभी ओषधियों को मिलाकर जितनी मात्रा बनती है, उतनी ही मात्रा में लवण लेना चाहिए। यह तथ्य 'सुश्रुतसंहिता' के वाताधिकार में 'पत्रलवणे' शब्द की व्याख्या में व्याख्याकार **गयदास** एवं **कार्त्तिक** ने सूचित किया है।

यद्यपि लवण से आयुर्वेद में सैन्धव लवण ही लिया जाता है, तथापि इस योग के वातजयार्थ होने के कारण प्रचुर लवण का ग्रहण मानना चाहिए; क्योंकि यह वातहर होता है। अत: इस प्रकार के प्रयोग में लवण शब्द से प्रचुर लवण लिया जाता है। गुरुग्रन्थ (व्याख्याकार निश्चलकर के गुरुजी द्वारा रचित ग्रन्थ) में भी इसी तथ्य का समथर्न करते हुए कहा है कि- प्रक्षेप में पेया आदि का संस्कार करते समय लवण शब्द से सैन्धव लवण लेना चाहिए, उत्कृष्ट होने के कारण। अत: ऐसे स्थलों में उसकी अपेक्षा अधिक वातहर होने से प्रचुर लवण का ग्रहण ही उचित है।

कुछ व्याख्याकार तो यहाँ लवण शब्द से- सैन्धव, रुचक, कृष्ण, विड एवं सामुद्र- इन पाँच लवणों का ग्रहण करते हैं, वातनाशक होने से। ये सभी व्याख्याएं उचित हैं, जैसा कि **आयुर्वेदसार** में भी कहा है। चिरबिल्वपत्र (पूतीकपत्र), त्रिकटु, ऐन्द्री (जलनीम), चव्य, अग्नि, सैन्धव- इन सबको संस्तर-निचित कर (तह बनाकर) जलाना चाहिए तथा इनकी भस्म को मस्तु के साथ पीना चाहिए। इससे गुल्मरोग नष्ट हो जाता है। 'योगशत' की व्याख्या कर्ममाला भी ऐसा ही विवरण प्रस्तुत करती है।

श्वास-ऊर्ध्ववात-कास-अरुचि-पीनस चिकित्सा-

शृङ्ग्यादि चूर्ण (योग सं.- २४)

शृङ्गीकटुत्रिक-फलत्रय-कण्टकारी-
भार्गी सपुष्करजटा लवणानि पञ्च।
चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्का-
श्वासोर्ध्ववातकसनारुचिपीनसेषु।।२३।।

शृङ्गी (कर्कटशृंगी/काकड़ासिंगी), त्रिकटु, त्रिफला, कण्टकारी, भार्गी, पुष्करजटा (पुष्करमूल) एवं पाँचों लवण- सैन्धव, रुचक (काला नमक),

२३. शृङ्गीफलत्रयकटुत्रय- ति.। शृङ्गीकटुत्रिकफलत्रय- इ.। शृङ्गीकटुत्रयफलत्रय- च-र.।

सौवर्चल (सोंचर नमक), विड और सामुद्र- इन सबका चूर्ण बनाकर उष्ण जल के साथ पीना चाहिए। इससे हिक्का, हिचकी, श्वास (दमा), ऊर्ध्ववात, कसन (खांसी), अरुचि (अरोचक) रोग तथा पीनस (पुराना जुकाम) इत्यादि रोग नष्ट हो जाते हैं।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

शृङ्गीत्यादि **योगशतस्य**। अत्र पुष्करजटा पुष्करमूलम्, न जटामांसी, यदुक्तम् **अक्षदेवीययोगशते**-

> बृहतीपुष्करभार्गीशृङ्गीत्रिफलाकटुत्रयाणाञ्च।
> चूर्णं सपञ्चलवणं श्वासहरं कोष्णवारिणा पीतम्।। इति।
>
> (चक्रदत्त-रत्नप्रभा, हिक्काश्वासचिकित्सा- ९, पृ. २८९)

नादेयीक्षार (योग सं.- २५)

नादेयी-कुटजार्क-शिग्रु-बृहती-स्नुग्-बिल्व-भल्लातक-
व्याघ्री-किंशुक-पारिभद्रक-जटापामार्ग-नीपाग्निकान्।
वासामुष्ककपाटलासलवणान् दग्ध्वा रसं पाचितं
हिंग्वादिप्रतिवापमेतदुचितं गुल्मोदराष्ठीलिषु।।२४।।

नादेयी (भूमिजम्बू/जामुन का एक भेद), कुटज (इन्द्रजौ), अर्क (आक), शिग्रु (सहिजन), बृहती (बड़ी कण्टकारी), स्नुक् (थूहर), बिल्व, भल्लातक (भिलावा), व्याघ्री (छोटी कण्टकारी), किंशुक (पलाश/ढाक), पारिभद्रकजटा (नीम की जड़), अपामार्ग (चिरचिटा/उल्टा काँटा), नीप (कदम्ब), अग्निक (चित्रक), वासा (अडूसा), मुष्कक (मोखा), पाटला

---

२४. ० भल्लातकी- च-र., ० भल्लातक- ति., इ.। पारिभद्रकटुका- ति., पारिभद्रकजटा- इ., च-र.।

तथा लवण- इन्हें जलाकर भस्म रूप क्षार राशि को एकत्र कर लें। इस क्षार को अर्द्धपल मात्रा में लेकर छह गुना जल में पकाएं। आधा शेष रहने पर इसे स्वच्छ वस्त्र या चालनी से छानकर इसमें हिंग्वादि चूर्ण (२१वें श्लोक में वर्णित) का प्रतिवाप (प्रक्षेप) देकर पान करें। यह योग गुल्मरोग, उदररोग एवं अष्ठीला आदि को नष्ट कर देता है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

नादेयीत्यादि **योगशतस्य**। नादेयी भूमिजम्बूः, तर्कारी केचिदिति **सनातनः**। नादेयीकुटजादीनां जटा मूलम्, न जटामांसी। अग्निश्चित्रकः यदुक्तमायुर्वेदसारे-

नादेयी कुटजं व्याघ्री कुली भल्लातकं वृषम्।
मुष्ककं पाटली नीपं किंशुकं पारिभद्रकम्।।
स्नुह्यर्कचित्रकं मार्गविश्वशिग्रुकसैन्धवम्।
दग्ध्वा पक्त्वा स्रुताश्चापो हिंग्वाद्यावापसंयुताः।।
पिबेन्मारुतगुल्मघ्नीर्जठराष्ठीलनाशिनीः।
वातव्याधिहराश्चैव वह्निसन्दीपनीः पराः।। इति।

अत्र कुली बृहती। **सनातनस्त्वाह**- कुटज इन्द्रयवः, कुटजत्वगिति केचित्। पारिभद्रस्यैव जटा मूलम्, अतो भल्लातकस्य फलम्। नादेय्यादिद्रव्यं पाटलान्तं दग्ध्वा क्षारः कार्यः। अस्मात् क्षारराशेराकृष्य उत्तमाद्यपेक्षया पल-त्रिकर्षार्धपलपरिमितं क्षारं षड्-गुणजले क्वाथयित्वार्धावशिष्टं त्रिभागावशिष्टं वा कृत्वा वस्त्रे एकविंशतिं वारान् परिस्राव्य पेयमिति, न त्वेकदा क्षारोदकं कृत्वा स्थाप्यम्, व्यापद्भयादिति **सुश्रुते** गुल्माधिकारे **गयदासः**। अत्रापि स एव न्यायः। अत एवोक्तम्-

पानीयो यस्तु गुल्मादौ तं वारानेकविंशतिम्।
आवपेत् षड्-गुणे तोये केचिदाहुश्चतुर्गुणे।। इति।

केचित् षोडशगुणजलेनाष्टांशशेषितं क्वाथमेव पाययन्ति। अत्रापि तदनुसारात्तथैव कार्यम्। अयं विधिः सर्वत्र पेये क्षारे बोध्यः। एतच्च हिंग्वादि प्रक्षिप्य पातव्यमित्याह- हिंग्वादीत्यादि। हिंग्वादिलब्धेऽपि लवणे सलवणा इति अधिकलवणप्रक्षेपार्थम्। अत्रोक्तहिंग्वादिद्वयमध्येऽन्यतरदिति **बकुलः।** हिंग्वादिपानं तुर्येणाष्टमकेनेत्यपि युक्तम्। **योगशतटीकाकारस्तु**- अत्रोक्तहिंग्वादिकमिति व्याचष्टे। (चक्रदत्त-रत्नप्रभा, गुल्मचिकित्सा-४ पृ. ४७६)

वैस्वर्य-पीनस-कफ-अरुचि चिकित्सा-

बृहत्तालीस मोदक (योग सं.- २६)

चव्याम्लवेतस-कटुत्रिक-तिन्तिडीक-
तालीस-जीरक-तुगा-दहनैः समांशैः।
चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धयुक्तं
वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम्।।२५।।

चव्य (चविका), अम्लवेतस, त्रिकटु, तिन्तिडीक (इमली), तालीस (तालीसपत्र), जीरक (जीरा), तुगा (वंशलोचन), दहन (चित्रक/जंगली कालीमिर्च)- इन्हें समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाएं। इस चूर्ण के बराबर मात्रा में गुड़ मिलाकर सभी को मसलें एवं चूर्ण के चतुर्थांश परिमाण में त्रिसुगन्ध (दालचीनी, इलायची, तेजपात) डालकर सेवन करें। इसमें त्रिसुगन्ध की मात्रा उतनी भी रखी जा सकती है, जिससे अपेक्षित सुगन्ध हो जाए। यह योग वैस्वर्य (स्वर की विकृति), पीनस (नजला), कफविकार एवं अरुचि को नष्ट करता है। यहां चक्रदत्तरत्नप्रभाकार निश्चलकर ने गुड की मात्रा चूर्ण के बराबर बताई है, परन्तु रूपनयन-टीका में इसे चूर्ण से दोगुना बताया है।

---

२५. चव्यम्ल- च-र., चव्याम्ल- ति., इ.। कटुत्रिक- इ., कटुत्रय- ति. च-र.। त्रिसुगन्धि- इ., च-र., त्रिसुगन्ध- ति.। समानैः- च-र., समांशैः- इ., ति.।
० गुडत्रिगुणितं- रू., गुडप्रमुदितं- इ., गुडप्रमृदितं- रूपनयन-सूचित पाठान्तर।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

चवीत्यादि ख्यातं **योगशतस्य**। तिन्तिडीकं महार्द्रकम्, तुगा वंशलोचना। समुदितचूर्णसमो गुडः, त्रिसुगन्धि चतुर्थांशिनेति **वृद्धा** इति **गुरवः**।

त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम्।
नागकेशरसंयुक्तं चातुर्जातकमुच्यते।। इति **नागभर्तृतन्त्रम्**।

वृद्धवैद्यव्यवहारादन्यद्रव्याच्चतुर्थांशः प्रत्येकं त्रिजातस्य गृह्यत इति **कर्ममाला**।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, स्वरभेदचिकित्सा- ६, पृ. २९५)

कास, अग्निमान्द्य, अर्शचिकित्सा-

लघु तालीस मोदक (योग सं.- २७)

तालीसचव्यमरिचं सदृशं द्विरंशां
मूलानुगां मगधजां त्रिगुणां च शुण्ठीम्।
कृत्वा गुडत्रिगुणितां गुटिकां सुगन्धां
कासाग्निसाद-गुदज-ज्वररुक्षु दद्यात्।।२६।।

तालीस (तालीसपत्र), चव्य (चविका), मरिच (कालीमिर्च)- इन्हें समान मात्रा में लें। पिप्पली एवं पिप्पलीमूल को द्विगुण मात्रा में लें। शुण्ठी (सोंठ) को त्रिगुण मात्रा में लें। इनका चूर्ण बनाकर गुड़ के साथ मसलकर एवं अपेक्षित मात्रा में त्रिसुगन्ध (दालचीनी, इलायची, तेजपात) डालकर गुटिका बनाएं। यह कास (खाँसी), अग्निमान्द्य (मन्दाग्नि), गुदज (बवासीर) एवं ज्वररोग को नष्ट करती है। इसमें गुड की मात्रा चूर्ण से दोगुनी होनी

२६. 'मूलं तुगामगधजं'- इति इ.पुस्तके मुद्रितपाठोऽशुद्धः। 'मूलानुगां मगधजां'- इति ति.-मातृकानुसारी पाठस्तु शुद्धः। कासाग्निमान्द्य- इ., कासाग्निसाद- ति.।

चाहिए। औषध-योगों में एक से तीन वर्ष तक पुराना गुड लिया जाता है, नया नहीं। नया गुड मन्दाग्निकारक एवं कृमिजनक होने से आयुर्वेद में सामान्यत: त्याज्य माना गया है।

समसित/समशर्कर चूर्ण (योग सं.- २८)

शुण्ठी-कणा-मरिच-नाग-दल-त्वगेलं
चूर्णीकृतं क्रमविवर्धितमूर्ध्वमन्त्यात्।
खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्य-
गुल्मारुचि-श्वसन-कण्ठहृदामयेषु।।२७।।

शुण्ठी (सोंठ), कणा (पिप्पली), मरिच (कालीमिर्च), नाग (नागकेशर) दल (पत्रक/तेजपात), त्वक् (दालचीनी), एला (छोटी इलायची)- इन्हें अन्त से पूर्व की ओर क्रमश: अधिक मात्रा में लेकर चूर्ण बनाएं। अर्थात् इलायची का एक भाग, दालचीनी के दो भाग, तेजपात के तीन भाग, नागकेशर के चार भाग, कालीमिर्च के पाँच भाग, पिप्पली के छह भाग तथा शुण्ठी के सात भाग लेने चाहिए। इनसे जितना चूर्ण बने उतनी ही शर्करा मिलाएं। इस प्रकार यह 'समशर्कर' नामक चूर्ण कहलाता है। इसके सेवन से गुल्म, अरुचि, श्वासरोग, हृदयरोग एवं कण्ठरोग नष्ट हो जाते हैं।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

शुण्ठीत्यादि **योगशतस्यैव**। (दलं पत्रकम्) क्रमविवर्धितमूर्ध्वमन्त्यादिति एलाया एको भाग:, त्वचो भागद्वयम् पत्रकस्य भागत्रयम्, (एवं समस्तेष्वपि) मिलितचूर्णसमा शर्करा, (अत एव समशर्करं चूर्णम्)।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, अर्शश्चिकित्सा- ६४, पृ. १७१)

२७. त्वगेला.- इ., त्वगेलं- ति.।

क्षुधावर्द्धक सैन्धवादि योग (योग सं.- २९)

सिन्धूत्थहिङ्गुत्रिफलायवानी-
व्योषैर्गुडांशैर्गुडकान् प्रकुर्यात्।
तैर्भक्षितैस्तृप्तिमवाप्नुवन्ना
भुञ्जीत मन्दाग्निरपि प्रभूतम्।।२८।।

सिन्धूत्थ (सैन्धव लवण), हिङ्गु (भुनी हींग), त्रिफला, यवानी (अजवायन), व्योष (त्रिकटु)- इनका चूर्ण बनाएं। इस चूर्ण के समान मात्रा में गुड़ मिलाकर गुडक (छोटे-छोटे गोले) बना लें। इनके सेवन से क्षुधा बहुत तीव्र हो जाती है तथा मन्दाग्नि व्यक्ति भी तृप्त न होता हुआ पर्याप्त आहार लेने लगता है। टीकाकार रूपनयन के अनुसार यहां गुड की मात्रा चूर्ण से दो गुना लेनी चाहिए, परन्तु निश्चलकर का मत है कि गुड की मात्रा चूर्ण के समान ही लेनी चाहिए।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

सिन्धूत्थेत्यादि ख्यातं **योगशतस्य**। गुडांशैरिति एकद्रव्यभागसमो गुडः। अग्निमान्द्यं हि प्रायः कफाधिक्याद् भवति, कफे तु गुडः प्रचुरोऽयुक्तः। गुडिका न भवतीति चेत्, मा भवतु, मनागधिकस्तु वाते। पित्ते त्वयं योगो न क्रियते एव तीक्ष्णत्वादिति **बकुलः**। सर्वचूर्णसमो गुड इति **वल्लभायां सनातनः**। गुडादंशोऽर्धं येषां समुदितानां ते गुडांशाः, अतो 'मोदके द्विगुणो गुडः' (इत्यत्र युज्यते) इति **कर्ममालायां सोमदासः**। विच्छेदपाठादंशशब्दाच्च **सनातनपक्षो** युक्तः, गुडककरणानुपपत्तेः वक्ष्यमाणयोगे तुल्यगुडेनेति दर्शनाच्च। न च गुडद्वैगुण्यं कफाधिक्यदोषादेव। तृप्तिमवाप्नुवन्निति मन्दाग्निरपि तावत् प्रभूतं भङ्क्ते यावत्तृप्तिमेति। अनाप्नुवन्निति पाठे, अत्यग्नित्वाच्च प्रभूतं भुञ्जानो न तृप्यति। (चक्रदत्त-रत्नप्रभा, अग्निमान्द्यचिकित्सा-१२, पृ.२०२)

२८. गुटिकां- ति., इ., गुडकान्- च-र.। प्रयुञ्जात्- च-र., प्रकुर्यात्- ति., इ.। तृप्तिमनाप्नुवन्, तृप्तिमवाप्नुवन्- इति निश्चलकर-सूचितं पाठान्तरम्।

आम-अजीर्ण-अर्श-वर्चोविबन्ध चिकित्सा-

गुडशुण्ठी आदि योग (योग सं.- ३०-३३)

गुडेन शुण्ठीमथवोपकुल्यां
पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा।
आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु
वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात्।।२९।।

गुड़ के साथ शुण्ठी का सेवन करने से आम (आंव), अजीर्ण (अर्श/ बवासीर) एवं वर्चोविबन्ध (मलबद्धता/कब्ज) आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार गुड़ के साथ उपकुल्या (पिप्पली), पथ्या (हरड़) एवं दाडिम (अनार)- इन सभी का अलग-अलग सेवन करने से भी पूर्वोक्त रोग नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार इस श्लोक में चार योग निर्दिष्ट हैं।

योगशत के प्राचीन टीकाकार **सनातन** के अनुसार गुड-शुण्ठी वाला पहला योग आम (आँव) में प्रयुक्त करना चाहिए तथा गुड-पिप्पली वाला दूसरा योग अजीर्णरोग में। इसी प्रकार गुड-हरीतकी वाला तीसरा योग बवासीर तथा गुड-दाडिम वाला चतुर्थ योग मलबद्धता में उपयोगी होता है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

गुडेनेत्यादि ख्यातं तस्यैव। एते चत्वारो योगाः आमादिषु क्रमेण योज्या इति **सनातनः**। (उपकुल्या पिप्पली)। अस्मिन् योगे- 'पथ्यां तृतीयां' इति पाठः, अतस्तृतीयामिति योगविच्छेदे। अन्ये तु त्रिसमं त्रयमित्याहुः। (अत एव **चन्द्रकलायां**) गुडेन शुण्ठीं पथ्यां तृतीयाम्, एवं दाडिमपथ्यामिति योजिता। अत्र (पक्व)फलं दाडिमादीनामित्यादि आमादिषु (सर्वेषु) यथायोगं बोध्यम्। गुडशुण्ठीभक्षणं (गुड)पिप्पलीभक्षणं वा तत्प्रयोगान्तरमेवेति **चक्रः**। पथ्यातृतीयां

२९. नित्यमिष्टम्, नित्यमद्यात्- इ., ति.। पथ्यातृती.- ति., पथ्यां तृती.- इ., च-र.।

दाडिममिति पदे भिन्नलिङ्गता स्यादिति **कर्ममाला**, तत्र विधेयवल्लिंगवचनानि भवन्तीति नपुंसकत्वमिति **वल्लभायां** परिहारः।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, अग्निमान्द्यचिकित्सा- १५, पृ. २०३)

पाण्डुरोग-चिकित्सा-

अयस्तिल मोदक (योग सं.- ३४)

अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः
सर्वैः समं माक्षिकधातुचूर्णम्।
तैर्मोदकः क्षौद्रयुतोऽनुतक्रः
पाण्ड्वामये दूरगतेऽपि शस्तः।।३०।।

अयः (विशिष्ट विधि से शोधित लोहचूर्ण अथवा लोहभस्म), तिल, त्र्यूषण (त्रिकटु) एवं कोल (बदरीफल/बेर)- इन्हें समान मात्रा में लें। इन सबके बराबर शोधित माक्षिक धातु (सोनामाखी) का चूर्ण (भस्म) लें; तदनन्तर मधु मिलाकर मोदक (लड्डू) बना लें। इसका सेवन करने के उपरान्त अनुपान के रूप में तक्र लें। इससे बहुत बढ़ा हुआ पाण्डुरोग (पीलिया) भी नष्ट हो जाता है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

अय इत्यादि ख्यात**मितप्रभस्य**। अयःशुद्धिः पूर्ववत्। त्र्यूषणं त्रिकटु, कोलं बदरफलमत्र, न कर्षार्धं वाच्यम्, यदाह **सुदान्तसेनः**–

लोहकोलतिलव्योषैः समैर्माक्षिकधातुना।
मधुना वटकान् कृत्वा जग्ध्वा तक्रं पिबेदनु।। इति।

रविगुप्तोऽपि-

लोहचूर्णं तिलव्योषकोलैस्ताप्यसमैः समम्।
पिण्डी मधुकृता घोरशोथपाण्डु-निवारणी।। इति। (सिद्ध.सं.-१४.११)

तिलः कृष्णः, एतत्कोलं कर्षार्धमिति **वल्लभा-दीपिका**व्याख्यानं प्रत्युक्तम्।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, पाण्डुरोगचिकित्सा- ९, पृ. २२४)

यह श्लोक रत्नप्रभाकार ने मुखरोग-चिकित्सा प्रकरण में 'सक्षौद्रं धारयेदेतद्०' (चक्रदत्त, मुखरोगचिकित्सा- ७४) इस श्लोक की व्याख्या में निम्न प्रकार से उद्धृत किया है- यदुक्तं **योगशते**- 'अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः सर्वैः समं माक्षिकचूर्णम् इत्यादि। अत्रैव **सुदान्तसेनः**-

लोहकोलतिलव्योषैः सर्वैर्माक्षिकधातुना।
मधुना वटकान् कृत्वा जग्ध्वा तक्रं पिबेदिति।।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, मुखरोगचिकित्सा- ७४, पृ. ७४५)

श्वासकासचिकित्सा-

हरीतक्यादि गुटिका (योग सं.- ३५)

हरीतकी-नागर-मुस्तचूर्णै-
र्गुडेन मिश्रैर्गुटिका विधेया।
निवारयत्यास्यविधारितेयं
श्वासं प्रवृद्धं प्रबलं च कासम्।।३१।।

हरीतकी (हरड़), नागर (शुण्ठी) एवं मुस्ता (मोथा) का चूर्ण बनाएं तथा इसके समान मात्रा में गुड़ मिलाकर गोली बना लें। मुख में रखकर चूसने से यह गोली बढ़े हुए श्वासरोग (दमा) एवं प्रबल कासरोग (खांसी) को भी नष्ट कर देती है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या इस प्रकार से है-

हरीतकीत्यादि ख्यात**ममितप्रभस्य**। गुडेन तुल्यं समुदितचूर्णेन सह समो गुड इत्यर्थः। युक्तमिति पाठे मोदके द्विगुणो गुडः इत्याहुः। **आयुर्वेदसारे**ऽपि-

---

३१. ०चूर्णं गुडेन तुल्यं गुडिका- च-र.। ०चर्णे गुडेन बद्धा गुटिका- इ.। ०गुडेन सार्द्धं गुटिका- ज., ०चूर्णैर्गुडेन मिश्रैर्गुटिका- ति.। गुडेन चेत्थं गुटिका- रू.। निवारयत्यास्यविधारितेयं- ति., च-र., निवारयेदास्यविधारितेयं- इ.। निवारयत्याशु मुखे विधारिता- भो.१, विधारितैषा- क.।

चूर्णं विश्वाब्दपथ्यानां गुडेन गुटिका: कृता:।
वक्त्रेण धारिता: घ्नन्ति कासं श्वासं महाबलम्।। इति।
(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, कासचिकित्सा- २९, पृ. २७६)

छर्दिचिकित्सा-

मनश्शिलादि चूर्ण (योग सं.- ३६)

मनश्शिलामागधिकोषणानां
चूर्णं कपित्थाम्लरसेन युक्तम्।
लाजैस्समांशं मधुनावलीढं
छर्दिं प्रवृद्धामसकृन्निहन्ति।।३२।।

शोधित मनश्शिला (मैनशिल), मागधिका (पिप्पली) तथा ऊषण (कालीमिर्च)- इनके चूर्ण को कपित्थ रस एवं अम्ल (निम्बूरस) के साथ कल्कित कर इसके समान मात्रा में लाजा (खील) मिलाएं। तदनन्तर इसमें उचित मात्रा में मधु मिलाकर चाटें। यह योग बहुत बढ़ी हुई छर्दि को भी नष्ट कर देता है।

चक्रदत्त के 'लाजाकपित्थमधु०' (चक्रदत्त, छर्दिचिकित्सा-२७) इस श्लोक की व्याख्या करते हुए रत्नप्रभाकार ने 'योगशत' के प्रस्तुत श्लोक को उद्धृत करते हुए निम्न प्रकार से व्याख्या की है-

लाजेत्यादि। श्लोकार्धैस्त्रयो योगा:। तत्राद्यो योग: मन:शिलाबीजपूराभ्यामपि, यदुक्तं **योगशते-**

मन:शिलामागधिकोषणानां चूर्णं कपित्थाम्लरसेन युक्तम्।
लाजै: समांशैर्मधुनावलीढं छर्दिं प्रसक्तामपि हन्ति शीघ्रम्।। इति।

---

३२. सितयावलीढं- मै., समांशं मधुनावलीढं- ति., भो.६। समांशैर्मधुनावलीढं- भो.२, च-र., इ.। प्रवृद्धामसकृन्निहन्ति- भो.२, प्रसक्तामसकृन्निहन्ति- भो.६, ति., इ., प्रसक्तामपि हन्ति शीघ्रम्- च-र.।

अत्राम्लो बीजपूरकः। तथाहि **चरकः**-

मनःशिलायाः फलपूरकस्य रसैः कपित्थस्य च पिप्पलीनाम्।
क्षौद्रेण चूर्णं मरिचैः सलाजं लिहञ्जयेच्छर्दिमुदीर्णवेगाम्।। इति।

(च.चि.- २०.३९)

(सुदान्तसेनोऽपि)-

लीढं लाजा-शिला-कृष्णा-मरिचं बीजपूरकात्।
स्वरसेन कपित्थस्य च क्षौद्रेण वमिं जयेत्।।

रविगुप्तोऽपि-

कृष्णोषणशिलाचूर्णं लाजाचूर्णं समाक्षिकम्।
कपित्थबीजपूराम्लकल्कितं छर्दिनाशनम्।। इति। (सिद्ध.सं.- १७.११)

अतः कपित्थफलस्यैवाम्लो रस इति न व्याख्या युक्तेति **कर्ममाला**।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, छर्दिचिकित्सा- २७, पृ. ३०५)

तृष्णाचिकित्सा-

तृष्णाहरी गुटिका (योग सं.- ३७)

वटप्ररोहं मधु कुष्ठमुत्पलं
सलाजचूर्णं गुटिकां प्रकल्पयेत्।
समाक्षिका सा वदने विधारिता
तृषं प्रवृद्धामपि हन्ति सत्वरम्।।३३।।

वटप्ररोह (वटशुङ्गा/बड़ की कच्ची कोंपल), मधु, कुष्ठ (कूठ), उत्पल (नीलकमल) एवं लाजाचूर्ण (खील का चूरा) डालकर और मधु मिलाकर गुटिका (गोली) बनाएं। इसे मुख में रखकर चूसें। इससे बहुत बढ़ी हुई प्रबल तृष्णा (प्यास) भी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

३३.समाक्षिका-, सुसंहता- च-र., सुसंहिता- ति.। वदनेन धारिता- इ., च-र., वदने विधारिता- ति.। गुटिकां प्रकल्पेयत्- ति. इ., गुटिकाश्च कल्पयेत्- च-र.।

चक्रदत्त के '**वटशुङ्गामयक्षौद्र०**' (चक्रदत्त, तृष्णाचिकित्सा-२४, पृ. ३११) इस श्लोक की व्याख्या करते हुए रत्नप्रभाकार निश्चलकर ने 'योगशत' के प्रस्तुत श्लोक को उद्धृत किया है-

वटशुङ्गोऽत्र वटप्ररोहः, यदुक्तममितप्रभे-

वटप्ररोहं मधु कुष्ठमुत्पलं सलाजचूर्णं गुटिकाश्च कल्पयेत्।
सुसंहता सा वदनेन धारिता तृष्णां प्रवृद्धामपि हन्ति सत्वरम्।। इति।

सिद्धसारेऽपि-'वटाङ्कुरोत्पलक्षौद्रलाजकुष्ठैः कृता दृढा' इति।

(तुलनीय- सिद्ध.सं.-१७-१८)

नकसीर एवं हिचकी की चिकित्सा-

नकसीर, हिचकी नाशक योग (योग सं.-३८-४१)

दूर्वारसो दाडिमपुष्पजो वा
घ्राणप्रवृत्तेऽसृजि नस्यमुक्तम्।
स्तन्येन वालक्तरसेन वापि
विण्मक्षिकाणां च निहन्ति हिक्काम्।।३४।।

नाक से खून बहने अर्थात् नकसीर रोग में दूर्वारस (दूब का स्वरस) अथवा दाडिम (अनार) के फूल का रस नस्य के रूप में दें। इससे यह रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है। हिक्का (हिचकी) रोग में स्तन्य (नारीदुग्ध) के साथ अथवा अलक्तक-रस (आलता के रस) के साथ मक्षिकाविट् (मधुमक्खी के छत्ते का मोम) देने से शीघ्र ही इसका शमन हो जाता है।

इस पद्य में चार योगों का निर्देश है, नकसीर में- १. दूर्वारस, २. दाडिमपुष्परस। हिचकी में-१. नारीदुग्ध के साथ मक्षिकाविट्, २. अलक्तक रस के साथ मक्षिकाविट्।

३४. नस्यमिष्टम्.- इ., नस्यमुक्तम्.- ति.।

त्वचा रोग चिकित्सा-

सिध्महर उद्वर्त्तन (योग सं.- ४२)

धात्रीफलं सर्जरसः सपाक्यः
सौवीरपिष्टश्च तदासुतश्च।
भवन्ति सिध्मानि यथा न
भूयस्तथेदमुद्वर्त्तनकं करोति।।३५।।

धात्रीफल (आंवला) एवं सर्जरस (राल) के साथ पाक्य (यवक्षार) मिला लें, पुनः इसे सौवीर (काञ्जी) के साथ पीस लें; तदनन्तर इसे पुनः काञ्जी में डालकर आसुत करें- अर्थात् सन्धानविधि के अनुसार तीन दिन डाले रखें। इस प्रकार तैयार किए गए इस योग से उद्वर्त्तन (उबटन) करें। इससे ऐसा प्रभाव होता है कि पुनः शरीर पर सिध्म (सीप/कुष्ठ का एक भेद) नहीं उभरता है।

यहां '**धात्रीफलं**' के स्थान योगशत की अनेक प्रतिलिपियों में '**धात्रीरसः**' पाठ मिलता है, परन्तु योगरत्नसमुच्चयकार 'चन्द्रट' ने '**धात्रीफलं**' पाठ ही माना है। उद्वर्त्तन की दृष्टि से चन्द्रट द्वारा प्रस्तुत पाठ अधिक उचित प्रतीत होता है। योगशत की रूपनयन-टीका में भी यही पाठ स्वीकार किया है। अतः हमने भी बहुज्ञ-सम्मत एवं औचित्यपूर्ण होने से यही पाठ स्वीकार किया है।

विशेष- यह श्लोक 'चक्रदत्त', कुष्ठचिकित्सा-प्रकरण में २९ संख्या पर उद्धृत है। वहाँ चक्रदत्त के हिन्दी व्याख्या संस्करण में 'तदासुतश्च' के स्थान पर 'तथा युतश्च' पाठन्तर को स्वीकार करते हुए जो अनुवाद उपलब्ध है, वह संगत नहीं है।

---

३५. चक्रदत्तेऽपि 'धात्रीरसः' इति पाठः। एतस्य स्थाने 'धात्रीफलम्' इति चन्द्रटसम्मतः पाठः- इति सूचयति चक्रदत्त-रत्नप्रभाकारो निश्चलकरः।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, कुष्ठचिकित्सा-२९, पृ. ६४४)।

तदा युतश्च.- इ., तथासुतैश्च- च-र., तदासुतैश्च- ति., तदासुतश्च- रू.।

द्रष्टव्य- **'चक्रदत्त'** (पृ. २८१), व्याख्याकार, इन्द्रदेव त्रिपाठी, चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी, (पुनर्मुद्रण २०११ ई.)। इसका उचित अर्थ यही है, जो ऊपर दिया गया है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

धात्रीत्यादि **अमितप्रभस्य**। धात्रीरसः आमलकस्वरसः, तदभावे क्वाथः। अन्ये तु कुष्ठप्रयोगे रसाञ्जनदर्शनाद् रसेनैव तदाहुः, तन्न, असम्प्रदायात्। **चन्द्रटस्तु** धात्रीफलमित्येवं पठति। सर्जरसो धूनकः। पाक्यो यवक्षारः, बिडलवणमिति **कर्ममाला**। आसुतः सन्धितः, सन्धानञ्च त्रिदिनम्, 'पूतिकृतं दिवसत्रयम्' (चक्रदत्त-कुष्ठचिकित्सा- ३८) इति योगान्तरदर्शनादिति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, कुष्ठचिकित्सा- २९, पृ. ६४४)

टिप्पणी- यहां 'पूतिकृत' पद से चक्रदत्त-कुष्ठचिकित्सा, श्लोक ३८ की ओर संकेत किया गया है, वह श्लोक इस प्रकार है-

एडगजातिलसर्षपकुष्ठं मागधिकालवणत्रयमस्तु।
पूतिकृतं दिवसत्रयमेतद्धन्ति विचर्चिकदद्रु सकुष्ठम्।।

एडगज (चकवड़), तिल, सरसों, कुष्ठ (कूठ), मागधिका (पिप्पली), सैन्धव लवण, कृष्ण लवण- इन्हें सम भाग में लेकर चूर्ण बनाएं। इसे मस्तु (दही के ताड़) में तीन दिन रखें। तदनन्तर इसका लेपन करने से विचर्चिका (खुजली), दद्रु (दाद) एवं सीप/कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

दूर्वादि प्रलेप (योग सं.- ४३)

दूर्वाभया-सैन्धव-चक्रमर्द-
कुठेरकाः काञ्जिकतक्रपिष्टाः।
त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलां
दद्रूं च कण्डूं च विनाशयन्ति।।३६।।

---

३६. कुठेरिकाः- इ., कुठेरका.- च-र.। दद्रुञ्च कण्डूञ्च विदारयन्ति- च-र., दद्रूश्च कण्डूश्च विनाशयन्ति- ति., इ.।

दूर्वा (दूब), अभया (हरड़), सैन्धव लवण, चक्रमर्द (चकवड़) एवं कुठेरक (तुलसी का एक भेद, जिसे 'पर्णास' भी कहते हैं)- इन सबको काञ्जी व तक्र (छाछ) के साथ पीसकर लेप बनाएं। इस लेप का तीन बार प्रयोग करने से बद्धमूल, कण्डू (खुजली) एवं दद्रु (दाद) शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। यहाँ कुठेरक (पर्णास) की जड़ लेनी चाहिए, ऐसा निश्चलकर का कथन है। यहाँ तीन बार के प्रलेप का उल्लेख नियमार्थ नहीं है- अर्थात् इसका प्रलेप तीन बार ही लगाना चाहिए, ऐसा नियम नहीं है, अपितु तीन बार के प्रलेप से ही यह अपना प्रभाव दिखा देता है, इस प्रकार इसकी शीघ्रकारिता एवं प्रभावातिशय को सूचित किया गया है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

दूर्वेत्यादि ख्यातं **योगशतस्य**। कुठेरकः पर्णासस्तस्य मूलं ग्राह्यम्। त्रिभिरिति शीघ्रकारित्वमुपलक्षयति, न तु नियममाह। (च.र., कुष्ठचिकित्सा-२०, पृ.६४२)

गण्डीरिकादि तैल (योग सं.- ४४)

गण्डीरिका-चित्रक-मार्कवार्क-
कुष्ठद्रुमत्वग्लवणैः समूत्रैः।
तैलं पचेन्मण्डलदद्रुकुष्ठ-
दुष्टव्रणारुःकिटिभापहारि।।३७।।

गण्डीरिका (मञ्जिष्ठा), चित्रक, मार्कव (भृङ्गराज), अर्क (आक), कुष्ठ (कूठ), द्रुमत्वक् (कुटज की छाल) एवं लवण- इनके कल्क के साथ गोमूत्र मिलाकर तेल सिद्ध करें। यह तेल मण्डल (कुष्ठ का एक भेद), दद्रु (दाद), कुष्ठ (कोढ़) एवं दुष्टव्रण (बिगड़े घाव) तथा किटिभ (कुष्ठभेद) को ठीक कर पीड़ा हर लेता है। इसमें गोमूत्र की मात्रा तेल से चार गुना तथा कल्क की मात्रा तेल के चतुर्थांश (एक चौथाई) रूप में ली जाती है।

३७. मण्डलदद्रुकुष्ठ-दुष्टव्रणानां किटिमापहारि- इ., मण्डलकुष्ठदद्रू-दुष्टव्रणा किटिभापहारि- ति.। मण्डलदद्रुकुष्ठदुष्ठव्रणारुःकिटिभापहारि- च-र.।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

गण्डीरिकेत्यादि **योगशतस्य**। गण्डीरिका मञ्जिष्ठेति **चन्द्रिका**, स्नुहीति **कर्ममाला विश्ववल्लभा** च। द्रुमत्वक् शोनालुत्वक्, कुटजाशोकयोरन्यतरस्येत्यन्ये इति **विश्ववल्लभैव**, अत एव **गुरवोऽपि** कुटजत्वगित्याहुः। गण्डीरिका स्नुही, द्रुमत्वक् शोनालुः, युदक्तमायुर्वेदसारे-

पक्वं कर्णार्कसिन्धूत्थ......कुष्ठमार्कवैः।
तैलं समूलैस्तद्धन्ति दद्रूश्च किटिभानि च।। इति

अत्र कर्णा सुवर्णाहुलिः, तथा च **द्रव्यावली**-'आरेवतस्तथा कर्णा कर्णिकारोऽथ रेवतः' इति। गोमूत्रं चतुर्गुणमिति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, कुष्ठ चिकित्सा- १५९, पृ. ६६७-६६८)

सिन्दूरादि तैल (योग सं.- ४५)

सिन्दूर-गुग्गुलु-रसाञ्जन-सिक्थ-तुत्थै-
स्तुल्यांशकैः कटुकतैलमिदं विपक्वम्।
कच्छूं स्रवत्पिटकिकामथवा विशुष्का-
मभ्यञ्जनेन सकृदुद्धरति प्रसह्य।।३८।।

सिन्दूर, गूगल, रसाञ्जन, सिक्थ (मधुमक्खी के छत्ते का मोम), तुत्थ (शोधित तूतिया)- इन्हें समान मात्रा में लेकर इनके कल्क के साथ कटुकतैल (सरसों का तेल) पकाएं। अभ्यञ्जन करने से अर्थात् विकार-स्थल पर लगाने से यह तेल स्राव वाली तथा बिना स्राव वाली, पिटक (फुंसियों वाली तथा बिना फुंसियों वाली सभी प्रकार की कण्डू (खुजली) को तुरन्त प्रभाव से ठीक कर देता है।

३८. सिन्धूतुल्यैः- ति., सिक्थतुत्थै-इ.। कण्डूस्रवत्पिटकिनीमथवापि शुष्का-, कच्छुं स्रवत्पिटकितामथवापि शुष्का- इ., कच्छूं स्रवत्पिटकिकामथवा विशुष्का- ति.।

षट्कट्वर तैल (योग सं.- ४६)

सुवर्चिका-नागर-कुष्ठ-मूर्वा-
लाक्षा-निशा-लोहितयष्टिकाभिः।
तैलं ज्वरे षड्गुणतक्रसिद्ध-
मभ्यञ्जनाच्छीतविदाहजित् स्यात्।।३९।।

सुवर्चिका (सज्जीखार), नागर (शुण्ठी/सोंठ), कुष्ठ (कूठ), मूर्वा, लाक्षा (लाख), निशा (हल्दी) एवं लोहित (लाल चन्दन) तथा यष्टिका (रक्तयष्टिका/मञ्जिष्ठा) के कल्क के साथ तेल सिद्ध करें। पकाते समय इसमें तेल से छह गुणा तक्र डालें। इस प्रकार तैयार किया गया यह तैल अभ्यञ्जन से शीतविदाह (शीतज्वर एवं दाहज्वर) को नष्ट कर देता है। मक्खन सहित तक्र को कट्वर कहते हैं, षड्-गुण तक्र में पकाने के कारण इस 'षट्कट्वर तैल' कहते हैं।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

सुवर्चिकेत्यादि **योगशतस्य**। (षट्कट्वरमिदम्)। अत्र लोहितं रक्तचन्दनम्, यष्टिका मञ्जिष्ठा। यदाह **विदेहः**-

लाक्षानिशाकुष्ठशुण्ठी मञ्जिष्ठा ससुवर्चिका।
मूर्वाचन्दनसंसिद्धं तैलं तक्रेऽथ षड्-गुणे।। इति।

अन्ये तु लोहिजयष्टिकां (समङ्गामुक्त्वा) मञ्जिष्ठामाहुः। यदाह **वृद्धवाग्भटः**-

स्वर्जिकाकुष्ठमञ्जिष्ठालाक्षामूर्वानिशौषधैः।
षट्तक्रैः साधितं तैलमभ्यङ्गाद् दाहशीतजित्।। इति।

सुश्रुतेऽपि-

३९. तैलं पचेत् षड्गुण- च-र., तैलं ज्वरे षड्गुण- ति. इ.। ०नुत् स्यात्.- च-र., ति., इ.,०जित् स्यात्.-।

लाक्षाविश्वनिशामूर्वामञ्जिष्ठास्वर्जिकामयैः।
षड्-गुणेन च तक्रेण सिद्धं तैलं ज्वरान्तकृत्।। इति।

आयुर्वेदसारे अच्युतोऽपि-

सर्जिकाविश्वमञ्जिष्ठालाक्षामूर्वानिशामयैः।
तैलं षड्-गुणतक्रेण सिद्धं ज्वरहरं परम्।। इति।

अनेनैव व्यवहारः, युक्तश्च। ननु यष्टिकेति न क्वचित् मञ्जिष्ठानाम किन्तर्हि? (रक्त)यष्टीकेति रक्तशब्दोऽत्राध्याहार्यः। कल्पनाबाहुल्याच्च **विदेहस्य** योगान्तरमेव भवतु वैकमन्यत्, तथाप्युभयवाक्यसंग्राहकत्वाद् **योगशतीयमेव** वाक्यं लिखितम्। शीतदाहहन्तृत्वं (चास्य) योगस्याचिन्त्यशक्तित्वात्। षट्कटवरमिति प्रसिद्धा सञ्ज्ञा। तत्र करणे सञ्ज्ञाविशेषं **चक्रपाणि**राह- दध्न इत्यादि। तैलपाके तु विशेषं स्मारयति। (घृतवदित्यादि), अत एवोक्तम्- 'फेनोऽतिमात्रं तैलं स्याच्छेषं घृतवदाचरेत्' इति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा-२७७, पृ.-१०५)

श्वास-अग्निमान्द्य- ग्रहणी चिकित्सा

गुडूच्यादि घृत (योग सं.- ४७)

सर्पिर्गुडूचीवृषकण्टकारी-
क्वाथेन कल्केन च सिद्धमेतत्।
पेयं पुराणज्वरकासशूल-
श्वासाग्निमान्द्यग्रहणीगदेषु।।४०।।

गुडूची (गिलोय), वृष (वासा/अडूसा) एवं कण्टकारी- इनके क्वाथ एवं कल्क से सिद्ध किए घृत का पान करना चाहिए। इससे पुराणज्वर (पुराना बुखार), कास (खांसी), शूल (दर्द), श्वास (दमा), अग्निमान्द्य (मन्दाग्नि) एवं ग्रहणी रोग नष्ट हो जाते हैं।

४०. सिद्धं- इ., पक्वं- ति.। विसर्पगुल्मकुष्ठमेतत्-, विसर्पगदास्रकुष्ठगुल्मान्- च-र., विसर्पमदास्रकुष्ठगुल्मान्- ति.।

विसर्प-मद-रक्तपित्त-कुष्ठ-गुल्म चिकित्सा-

वृषादि (वासादि) घृत (योग सं.- ४८)

वृषखदिरपटोलनिम्बपत्र-
त्वगमृतामलकीकषायकल्कैः।
घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं
जयति विसर्पमदास्रकुष्ठगुल्मान्।।४१।।

वृष (वासा/अडूसा), खदिर (खैर), पटोलपत्र (परवल के पत्ते), निम्बपत्र (नीम के पत्ते) एवं त्वग् (नीम की छाल), अमृता लता (गिलोय की बेल), आमलकी (आंवला)- इनके कषाय एवं कल्क के साथ अभिनव घृत (ताजा घी) पकाकर सिद्ध करें। इसका सेवन करने पर यह घृत विसर्प, गुल्म एवं कुष्ठ रोग को नष्ट कर देता है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

वृषेत्यादि। वृषो वासा। घृतमभिनवमिति नूतनमेवात्र यौगिकम्। हरीतकी-बिभीतकयोगादपि शमनायोगे घृतस्य साधनं, यदाह **तीसटः-**

खदिरपटोलपत्रवृषनिम्बफलत्रितयै-
रमृतलतान्वितैरपि पयः पिबतः
क्वथितं प्रशान्तिमुपयाति कुष्ठमपि
खदिराष्टकेन परिसर्पविसर्पहरम्।। इति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा- विसर्पविस्फोटस्नायुकचिकित्सा-३४, पृ.६८८)

---

४१. ०त्वगमृतधात्रीकषायकल्कयुक्तम्.- च-र., त्वगमृतामलकीकषायकल्कैः- ति.

वज्रक घृत (योग सं.- ४९)

अमृतापटोलपिचुमन्दधावनी-
त्रिफलाकरञ्जवृषकल्कवारिभिः।
घृतमुत्तमं विधिविपक्वमादृतः
प्रपिबन्निदं जयति कुष्ठमातुरः।।४२।।

अमृता (गिलोय), पटोल (परवल के पत्ते), पिचुमन्द (नीम की छाल), धावनी (कण्टकारी), त्रिफला, करञ्ज, वृष (वासा/अडूसा)- इनके कल्क एवं क्वाथ के साथ विधिवत् घृत सिद्ध करें। इस घृत का पान करने से कुष्ठ रोग से पीड़ित व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। यह योग वैद्यों में 'वज्रक घृत' के नाम से प्रसिद्ध है।

खण्डकूष्माण्डकावलेह (योग सं.- ५०)

खण्डान् कूष्माण्डकानामथ पचनविधिस्विन्नशुष्काज्यभृष्टान्
न्यस्येत् खण्डे विपक्वे समरिचमगधा-शुण्ठ्यजाजी-त्रिगन्धैः।
लेहोऽयं बालवृद्धानिलरुधिरि-कृश-स्त्रीप्रसक्तिक्षतानां
तृष्णाकासास्रपित्तश्वसनगुदरुजाछर्दितानां च शस्तः।।४३।।

कूष्माण्ड के खण्डों को स्विन्न कर सुखा लें तथा घृत में पकाएं; तदनन्तर इनमें कालीमिर्च, पीपल, शुण्ठी, जीरा एवं त्रिगन्ध (त्रिजातक- दालचीनी, इलायची, तेजपात) मिलाकर लेह बना लें। यह लेह बालक, वृद्ध एवं वातरक्त से पीड़ित व्यक्तियों के लिए हितकर होता है। यह कृश, स्त्रीसंसर्ग से क्षीण तथा तृष्णा, कास, रक्तपित्त, श्वासरोग, अर्शरोग व छर्दिरोग से पीड़ित व्यक्तियों के लिए प्रशस्त माना जाता है।

४२.प्रपिबेदिदं जयति, प्रपिबंजयति- ति., प्रपिबन्निदं जयति- इ.।

आनाह चिकित्सा-

आनाहहरी वर्त्ति/फलवर्त्ति (योग सं.- ५१)

विपाच्य मूत्राम्लमधूनि दन्ती-
पिण्डीतकृष्णाबिडधूमकुष्ठैः।
वर्त्तिं कराङ्गुष्ठनिभां घृताक्तां
गुदे रुजानाहहरीं विदध्यात्।।४४।।

दन्ती, पिण्डीत (मदनफल की प्रजाति का फल/पिण्डार), कृष्णा (पिप्पली), विड लवण, धूम (गृहधूम) एवं कुष्ठ (कूठ) के चूर्ण को गोमूत्र, अम्ल (काञ्जी या शुक्त आदि अम्ल द्रव्य) एवं मधु के साथ पकाकर हाथ के अंगूठे के बराबर वर्त्ति बनाएं। इसे घृत में लिप्त कर मलद्वार में रखें। यह पीड़ा एवं आनाह (अफारा) को नष्ट करती है। यह वर्त्ति वैद्य-समाज में फलवर्त्ति के नाम से प्रसिद्ध है।

यह श्लोक चक्रदत्त के व्याख्याकार निश्चलकर ने 'आगारधूमसिन्धूत्थ०' (चक्रदत्त, उदावर्तानाह-चिकित्सा- १४, पृ. ४६४) की व्याख्या करते हुए इस प्रकार उद्धृत किया है- आगारेत्यादि ख्यातम्। अत्रान्तरे वर्त्तिरियं बोध्या-

विपाच्य मूत्राम्बुमधूनि दन्ती पिण्डीतकृष्णाबिडसिन्धुकुष्ठैः।
वर्त्तिं कराङ्गुष्ठनिभां घृताक्तां गुदे रुजानाहहरीं विदध्यात्।। इति।

(अमितप्रभस्येयं वर्त्तिः)

(शालाक्य-तन्त्रम्)

शिरोरोगहर नस्य (योग सं.- ५२)

सशर्करं कुंकुममाज्यभृष्टं
नस्यं विधेयं पवनासृगुत्थे।
भ्रूकर्णशङ्खाक्षिशिरोऽर्द्धशूले
दिनाभिवृद्धिप्रभवे च रोगे।।४५।।

वातरक्त की विकृति से भ्रू (भौंह), कर्ण (कान), शङ्ख (कनपटी) एवं नेत्रों में शूल (दर्द) उत्पन्न हो जाता है। इसी विकृति से दिन में आधे सिर में दर्द होने लगता है, जो दिन बढ़ने के साथ बढ़ता रहता है तथा रात्रि में शान्त हो जाता है। इन रोगों में घृत के साथ कुंकुम एवं शर्करा (शक्कर) को भूनकर नस्य लेना चाहिए। इससे ये रोग नष्ट हो जाते हैं।

अञ्जन-वर्त्ति (योग सं.- ५३)

पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजै-
स्त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्त्तिम्।
तयाञ्जयेत् तत्सपदि प्रवृद्ध-
मक्ष्णोर्जयेत् कष्टमपि प्रकोपम्।। ४६।।

पथ्या (हरड़), अक्ष (बहेड़ा) एवं धात्री (आंवला)- इन तीनों फलों के मध्यबीज (बीज के अन्दर की मज्जा/गिरी) को क्रमशः तीन, दो तथा एक भाग में लें अर्थात् हरड़ की मज्जा के तीन भाग, बहड़े की मज्जा के दो भाग तथा आंवला की मज्जा का एक भाग लें। इन्हें जल के साथ सूक्ष्म पीसकर

४५. दिनाभि- इ., दिनादि- ति.

४६. स्तन्याञ्जितेनैव सुवृद्धमक्ष्णोर्व्याधिं हरेद् दुष्टमपि त्रिदोषम्, तयाञ्जयेत् तत्सपदि प्रवृद्धमक्ष्णोर्हरेद् दुष्टमपि प्रकोपम्.- इ., तयाञ्जयेत् तत्सपदि प्रवृद्धमक्ष्णोर्जयेद् कष्टमपि प्रकोपम्- ति.।

वर्त्ति बनाएं। इसे स्तन्य अर्थात् नारीदुग्ध के साथ घिसकर आँखों में लगाएं, इससे आँखों के बढ़े हुए कष्टदायक त्रिदोषजन्य रोग नष्ट हो जाते हैं।

नेत्रलेप (योग सं.- ५४)

हरीतकी-सैन्धव-तार्क्ष्यशैलैः
सगैरिकैः स्वच्छजलेन पिष्टैः।
बहिः प्रलेपं नयनस्य कुर्यात्
सर्वाक्षिरोगप्रशमार्थमेतम्।।४७।।

हरीतकी (हरड़), सैन्धव लवण, तार्क्ष्य (रसाञ्जन), शैल (शिलारस) एवं गैरिक- इनको स्वच्छ जल के साथ पीसकर आँखों की पलकों पर लेप करें। इससे सभी नेत्ररोग शान्त हो जाते हैं।

नेत्र-आश्च्योतन (योग सं.- ५५)

ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं
सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम्।
आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्यात्
कण्डूञ्च दाहञ्च रुजञ्च हन्यात्।।४८।।

लोध्र का चूर्ण बनाकर उसे घी में भूने। तत्पश्चात् उसमें अल्प मात्रा में सैन्धव लवण मिलाएं। यह मात्रा इतनी होनी चाहिए, जिससे नयनों को कष्ट न पहुँचे। अब इन दोनों को सौवीर (काञ्जी) के साथ पीस लें। तदुपरान्त इसे स्वच्छ, श्वेत वस्त्र में बांधकर नयनों पर आश्च्योतन करें अर्थात् रस टपकाएं। इससे आँखों की खुजली, जलन तथा पीड़ा नष्ट हो जाती है। यह आश्च्योतन बहुत गर्म या बहुत शीतल नहीं होना चाहिए। कफ-वात दोष में

४७.सर्वाक्षिरोगं प्रशमं नयेत्तत्-, सर्वाक्षिरोगप्रशमार्थमेतत्- ति., इ.।
४८.रुजं निहन्यात्-, रुजञ्च हन्यात्- ति. इ.।

कोष्ण (कोसा) तथा पित्त दोष में थोड़ा शीतल होना चाहिए। यह आश्च्योतन उतनी ही मात्रा में देना चाहिए, जिसे व्यक्ति सरलता से सहन कर सके।

पिल्लहर योग (योग सं.- ५६-५८)

हन्त्यर्जुनं शर्करयाब्धिफेनो
नक्तान्धतां गोशकृता च कृष्णा।
रसाञ्जनं व्योषयुतं च पिल्लं
तापीसमुत्थं मधुना च शुक्लम्।।४९।।

शर्करा के साथ मिश्रित अब्धिफेन (समुद्र के छाग) को आँखों में लगाने से यह नक्तान्धता (रतौंधी) को नष्ट कर देता है। गाय के गोबर के अन्दर पिप्पली को रखकर आग में इस प्रकार पकाएं कि वह जले नहीं। इस प्रकार पकाई गई पिप्पली को पीसकर अञ्जन के रूप में नेत्रों में लगाने से भी नक्तान्धता (रतौंधी) नष्ट हो जाती है। त्रिकटु से युक्त रसाञ्जन आँखों के पिल्ल नामक रोग को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार शोधित सोनामाखी को मधु के साथ पीसकर नेत्रों में लगाने से शुक्ल (फूला) नष्ट हो जाता है।

नेत्रलेप- १. (योग सं.- ५९)

पुष्पाख्य-तार्क्ष्यज-सितोदधिफेनसर्ज-
सिन्धूत्थ-गैरिक-शिला-मरिचैः समांशैः।
पिष्टैश्च माक्षिकरसेन रसक्रियेयं
हन्त्यन्धतां च तिमिरार्जुनवर्त्मरोगान्।।५०।।

पुष्पाख्य (पुष्पाञ्जन), तार्क्ष्यज (रसाञ्जन), सिता (शर्करा), उदधिफेन (समुद्र का छाग), सर्ज (राल), सिन्धूत्थ (सैन्धव लवण), गैरिक

४९.तु पिल्लं- ति., च पिल्लं- इ.।
५०. फेनशंख। पिष्टे तु माक्षिक.-ति., पिष्टैः समाक्षिक-, पिष्टैस्तु माक्षिक- इ.।
हन्त्यन्धतां च- , हन्त्यर्मकाच- ति., इ.।

(गेरु), शिला (मैनशिल) एवं कालीमिर्च- इन्हें सम मात्रा में लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनाएं तथा मधु के साथ रसक्रिया (उबाल कर गाढ़ा) करें। यह योग अन्धता, तिमिर, अर्जुन (शुक्ल) एवं वर्त्म (पलकों) के रोगों को नष्ट कर देता है। क्वाथ या रसादि को उबालकर गाढ़ा बनाना 'रसक्रिया' कहलाती है।

नेत्रलेप- २. (योग सं.- ६०)

मुस्तोशीररजो यवाः समरिचं सिन्धूद्भवं कट्फलम्।
दार्वीतुत्थकशङ्खफेननलदं कालानुसार्यञ्जनम्।
तुल्यं चूर्णितमायसे विनिहितं क्षौद्रान्वितं शस्यते
कण्ड्वर्म्मामयरक्तराजितिमिरे पिल्लोपदेहेषु च।।५१।।

मुस्ता (नागरमोथा) एवं उशीर (खस) का चूर्ण, यव (जौ), मरिच (कालीमिर्च), सिन्धूद्भव (सैन्धव लवण), कट्फल, दार्वी (दारुहरिद्रा), तुत्थक (तूतिया), समुद्र से मिलने वाले शङ्ख, फेन (समुद्र का छाग), नलद (जटामांसी)- इनको समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाएं तथा मधु मिलाकर लोहे के पात्र में रखें। इसे आँखों में लगाना चाहिए, इससे आँखों की खुजली, आँखों में लाल धारियां उभरना, तिमिर रोग एवं पिल्ल रोग नष्ट हो जाते हैं। उक्त रोगों में यह बहुत प्रशस्त औषध है।

नेत्ररोगहर योग (योग सं.- ६१)

मञ्जिष्ठा-मधुकोत्पलोदधिकफ-त्वक्-सेव्य-गोरोचना-
मांसी-चन्दन-शङ्खपत्र-गिरिमृत्तालीस-पुष्पाञ्जनैः।
सर्वैरेव समांशमनञ्जनमिदं शस्तं सदा चक्षुषोः
कण्डूक्लेदमलास्रशोणितरुजापिल्लार्मशुक्लापहम्।।५२।।

५१.कण्डूवर्त्मनि रक्तराजितिमिरे-, पिल्लोपरोगेषु-, पिल्लोपदेहेषु- ति., इ.।
५२.सर्वैरेव समांशकैश्च सुगमं शस्तं सदा चक्षुषो-
दाहक्लेदमलास्रशोणितरुजापिल्लादि-शुक्रापहम्- पाठान्तरम्।

मञ्जिष्ठा (मंजीठ), मधुक (मुलेठी), उत्पल (नीलकमल), उदधिकफ (समुद्र का छाग), त्वक् (दालचीनी), सेव्य (उशीर), गोरोचन, मांसी (जटामांसी), चन्दन, शङ्ख, पत्र, गिरिमृत् (गैरिक), तालीस (तालीसपत्र), पुष्पाञ्जन, इन्हें सम मात्रा में लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनाएं। इस चूर्ण के बराबर सौवीराञ्जन मिलाकर अञ्जन तैयार करें। यह योग आंखों की जलन, चिपचिपाहट, रक्तपित्त, पीड़ा, पिल्लरोग एवं शुक्ररोग का नष्ट करता है।

कण्ठरोगहर क्वाथ (योग सं.- ६२)

क्वाथः समुस्तातिविषेन्द्रदारु-
कलिङ्गपाठाकटुरोहिणीनाम्।
गोमूत्रसिद्धो मधुना च युक्तः
श्रेष्ठो गलव्याधिषु सर्वजेषु।।५३।।

मुस्ता (मोथा), अतिविषा (अतीस), इन्द्रदारु (देवदारु), कलिङ्ग (इन्द्रजौ), पाठा, कटुरोहिणी (कुटकी)- इन द्रव्यों का गोमूत्र के साथ क्वाथ बनाएं। शीतल होने पर इसमें उचित मात्रा में मधु मिलाकर पान करें। यह सर्वज (त्रिदोषज) कण्ठरोगों में श्रेष्ठ माना जाता है।

कण्ठरोगहरी गुटिका (योग सं.- ६३)

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां
रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम्।
क्षौद्रेण कुर्याद् गुटिकां मुखेन
तां धारयेत् सर्वगलामयेषु।।५४।।

यवाग्रज (यवक्षार), तेजवती (ज्योतिष्मती/मालकांगनी), पाठा, रसांजन, दारुनिशा (दारुहरिद्रा) एवं कृष्णा (पिप्पली)- इन्हें पीसकर मधु के

५३.गोमूत्रयुक्तो.-, गोमूत्रसिद्धो.- इ.। प्रयुक्तः- मै., च युक्तः- ति., इ.।
५४.तेजवती सपाठा रसाञ्जनं दारुनिशा सकृष्णा- इ., तेजवतीं सपाठां रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम्- ति.।

साथ गुटिका बनाएं। इसे मुख में रखकर धीरे-धीरे चूसते रहें। यह गुटिका (गोली) सभी गलरोगों में प्रशस्त मानी जाती है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या इस प्रकार से है-

यवाग्रजमित्यादि **योगशतस्य**। तेजवती ज्योतिष्मती इति **चन्द्रिका कर्ममाला** च। युक्तञ्चैतत्-

तेजस्विनी तेजवती तेजोह्वा तेजिनीति सा।
अश्वघ्नी वङ्क्षणा पीता पारिजाता महौजसी।।
ज्योतिष्मती तु कटभी सुवर्णलतिकेति च।

(तुलनीय- द्रव्यावलि/धन्वन्तरिनिघण्टु, गुडूच्यादिवर्ग-२५७)

इत्यादिद्रव्यावल्यभिधानात्। (चक्रदत्त-रत्नप्रभा, मुखरोगचिकित्सा-७७,पृ. ७४६)

मुखपाकहर कवलग्रह (योग सं.- ६४)

दार्वीगुडूचीसुमनःप्रवाल-
द्राक्षा-यवानी-त्रिफलाकषायः।
क्षौद्रेण युक्तः कवलग्रहोऽयं
मुखस्य पाकं शमयत्युदीर्णम्।।५५।।

दार्वी (दारुहल्दी), गुडूची (गिलोय), सुमनःप्रवाल (जाती/जूही के पत्ते), द्राक्षा (दाख/मुनक्का), यवानी (अजवायन) एवं त्रिफला का क्वाथ बनाएं। शीतल होने पर इसमें मधु मिलाकर अनेक बार कवलग्रह (कुल्ला) करें। यह योग प्रबल मुखपाक (मुँह पकने के रोग) को शान्त कर देता है।

यह श्लोक 'यदुक्तममितप्रभे' ऐसा कहकर चक्रदत्त-रत्नप्रभा में निश्चलकर ने 'जातीपत्रामृताद्राक्षा०' (चक्रदत्त, मुखरोग-चिकित्सा- ८७, पृ.-७४८) की व्याख्या में उद्धृत किया है।

५५.०द्राक्षायवास- ति., ०द्राक्षायवानी- इ.।

दन्तरक्तस्राव एवं पीडानाशक मञ्जन (योग सं.- ६५)

कुष्ठं दार्वी लोध्रमब्दं समङ्गा
पाठा तिक्ता तेजनी पीतिका च।
चूर्णं शस्तं घर्षणं तद् द्विजानां
रक्तस्रावं हन्ति कण्डूरुजश्च।।५६।।

कुष्ठ (कूठ), दार्वी (दारुहल्दी), लोध्र, अब्द (मुस्ता), समङ्गा (मंजिष्ठा), पाठा, तिक्ता (कटुकी), तेजनी (ज्योतिष्मती), पीतिका (हल्दी)- इन सबको महीन (सूक्ष्म) पीसकर चूर्ण बनाएं। इसे मंजन के रूप में दाँतों पर मलें। यह रक्तस्राव, खुजली एवं दाँतों की पीड़ा को नष्ट कर देता है।

यह श्लोक भी 'चक्रदत्त' में 'योगशत' से उद्धृत किया गया है। वहां इस पर निश्चलकर की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

कुष्ठमित्यादि। अत्र दार्वीस्थाने मांसीति **वैद्यप्रसारकः**।
तिक्ताब्दतेजनी-पाठानिशायुग्लोध्रकुष्ठजम्। (सिद्ध.सं.-२६.७२)
ससमङ्गं रजो घर्षाद् दन्तकण्ड्वस्रतोदजित्।।

इति **सिद्धसारात्**। तेजनी ज्योतिष्मती (इति **जिन)दासः**। अत्र तेजनीत्युक्ता नियमेन सर्वत्र तेजोवतीति पाठात्। **वाग्भटोऽपि**-

'तेजोवतीहरिद्राद्वयकुष्ठपाठा-कटुकारोहिणीलोध्रसमङ्गामुस्तैः प्रतिसारणं सर्वदन्तमांसामयेषु कण्डूश्वयथुवेदनारक्तस्रुतिहरम्' इति।

पीतिका हरिद्रा। चकाराच्छोथमपि (यथो)क्तं **वाग्भटादौ**। विदेहेऽप्यन्यथा-

शीतादे दन्तानां मांसात्तु स्रावयेदसृग्दुष्टम्।
कासीसलोध्रकृष्णामनःशिलालप्रियङ्गुतेजोह्वाः।।
क्वाथश्चूर्णं मधुना युक्तं शीतादमांसहरम्। इति।

५६.रोध्रमब्दं- ति., लोध्रमब्दं- इ.। ०रुजञ्च- ति. इ., ०रुजश्च, रुजाञ्च- च-र.।

प्रतिसारणान्तरादिकमत्र बोध्यम्, यदुक्तमायुर्वेदसारे-

शीतादे स्राविते रक्ते क्षौद्राद्यैः प्रतिसारयेत्।
पार्थत्वक्त्रिफलाताक्ष्यंफलिनीविश्वमुस्तकैः।।
एषां क्वाथैः शृतं तैलं स्वादुभिः स्याच्च लावणम्। इति।

अस्यार्थः- पार्थत्वगादिमुस्तकान्तैश्चूर्णितैः क्षौद्राप्लुतैः प्रतिसारयेदिति योज्यम्, एषां क्वाथैरपि गण्डूषधारणं स्यादिति बोध्यम्। स्वादुभिः मधुरवर्गैः शृतं तैलं नावनं स्यादित्यर्थः, यदाह **वाग्भटः**- 'शीतादे शोणितं विस्राव्य रसाञ्जनमुस्ता-त्रिफलार्जुनत्वक्प्रियङ्गुमहौषधकषायं गण्डूषं धारयेत्। एभिरेव सक्षौद्रैः प्रतिसारणम्, मधुरवर्गसिद्धं तैलं नस्यमिति'। एभिरेव योगैः प्रमेहोक्तचन्द्रप्रभागुटिकया च महारसव्याविद्धम्। तथा **सत्पण्डित-ध्यानकीर्तिरपि** योगैरेभिर्लेपगण्डूषधारणैर्वक्ष्य माणलौहाभ्रके चास्माभिरुपनीत इति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, मुखरोगचिकित्सा- ११, पृ. ७२८)

कर्णपीडाहर कटुकतैल (योग सं.- ६६)

सौवीर-शुक्तार्द्रक-मातुलुङ्ग-
मांसीरसैर्गुग्गुलुसैन्धवैश्च।
पक्त्वा च तैलं कटुकं निषिञ्चेत्
तत्कर्णयोः कर्णरुजोपशान्त्यै।।५७।।

सौवीर (काञ्जी), शुक्त (सिरका), आर्द्रक (अदरक) का रस, मातुलुङ्ग (निम्बू) का रस, मांसीरस (जटामांसी का रस), गुग्गल एवं सैन्धव के साथ कटुकतैल (कड़वा तैल/सरसों का तेल) सिद्ध करें। शीतल होने पर इसे कानों में डालें। यह कर्णरुजा (कानों की पीड़ा) को नष्ट कर देता है।

५७.शुष्कार्द्रक-, शुक्तार्द्रक- ति., इ.। मातुलिङ्ग- ति., मातुलुङ्ग- इ.। पक्वं तु- इ., पक्त्वा च- ति., पक्त्वाथ- रू.। निषेव्यं-, निषिञ्चेत्- ति., इ.। कर्णरुजं निहन्ति-, कर्णरुजोपशान्त्यै- ति., इ.।

ऊर्ध्वजत्रुरोगहर घृत (योग सं.- ६७)

वासानिम्बपटोलपर्पटफलश्रीमुस्तदार्व्यम्बुदै-
स्तिक्तोशीरदुरालभा-त्रिकटुक-त्रायन्तिकाचन्दनैः।
सर्पिः सिद्धमथोर्ध्वजत्रुविकृतिघ्राणाक्षिशूलादिषु
त्वग्दोषे ज्वरविद्रधिव्रणरुजाशुक्रेषु चैवेष्यते।।५८।।

वासा (अडूसा), नीम की छाल, पटोलपत्र, पर्पट (पित्तपापड़ा), फलश्री (कच्चाबिल्व फल), मुस्ता, दार्वी (दारुहरिद्रा), अम्बु (बालक/सुगन्धबाला), तिक्ता (कुटकी), दुरालभा (धमासा), त्रिकटुक (त्रिकुटा), त्रायन्तिका (त्रायमाणा), चन्दन (लाल चन्दन)- इनके कल्क एवं चतुर्गुण जल के साथ घृत सिद्ध करें। यह घृत ऊर्ध्वजत्रु-विकारों में, नासिका व नेत्र के शूल आदि रोगों में तथा त्वग्दोष, ज्वर, विद्रधि (फोड़ा) व कुष्ठ, व्रण व उसकी पीड़ा आदि में बहुत उपयोगी एवं हितकर होता है। यह योग नेत्रगत शुक्ररोग में ही बहुत उपादेय होता है। इस योग में प्रयुक्त घृत गाय का होना चाहिए, यह भी पुराना होने पर इसके लिए अधिक उपयुक्त माना गया है।

तिमिरनाशक व शिरोरोगहर घृत (योग सं.- ६८)

दार्वीपर्प्पटनिम्बवत्सककणादुःस्पर्शयष्टिवृषा-
स्त्रायन्तीत्रिफलापटोलकटुकाभूनिम्बरक्ताम्बुदाः।
एषां कल्ककषायसाधितमिदं सर्पिः प्रशस्तं दृशः
पित्तासृक्प्रभवेषु सर्वतिमिरेषूर्ध्वेषु च व्याधिषु।।५९।।

दार्वी (दारुहल्दी), पर्पट (पित्तपापड़ा), निम्ब (नीम), वत्सक (इन्द्रजौ), कणा (पिप्पली), दुःस्पर्श (दुरालभा/धमासा), यष्टि (मधुयष्टी/मुलेठी), वृष

५८.श्रीमुस्तदार्व्यम्बुभि- ति., श्रीचव्यदार्व्यम्बुभि- इ., श्रीचव्यदार्व्यम्बुदै-। ०जत्रुविकृति- ति., इ., ०जत्रुविकृतौ-। त्वग्दोषे ज्वरविद्रधिव्रणगदे शुक्लेषु चैव क्षते-, त्वग्दोषज्वरविद्रधिव्रणरुजाशुक्रेषु चैवेष्यते- ति., इ.।

५९.वृष.- उ., वृषाः- इ.। प्रशस्तं नृणां- ति., प्रशस्तं दृशः- इ.। वातादिषु-, च व्याधिषु- ति. इ.।

(वासा/अडूसा), त्रायन्ती (त्रायमाणा), त्रिफला, पटोल (परवल), कटुका (कुटकी), भूनिम्ब (चिरायता), रक्त (लालचन्दन), अम्बुद (मुस्ता)- इन द्रव्यों के कल्क एवं कषाय से सिद्ध घृत नेत्रों के लिए अत्यन्त हितकर होता है। यह पित्तरक्तजन्य रोगों में, सभी प्रकार के तिमिर रोगों में तथा ऊर्ध्वजत्रु-विकारों (गला एवं इसके ऊपर वाले भाग के रोगों) में अतिश्रेष्ठ माना जाता है।

तिमिरघ्न एवं ऊर्ध्वजत्रुरोगहर तैल (योग सं.- ६९)

शुक्लैरण्डान्मूलमथोग्रा शतपुष्पा
पुष्पोद्भूतं यच्च बृहत्यास्तगरञ्च।
पक्वं तैलं तैः सपयस्कैस्तिमिरघ्नं
नस्यं श्रेष्ठं व्याधिषु चोर्ध्वेष्वपरेषु।।६०।।

श्वेत एरण्ड की जड़, उग्रा (वचा), शतपुष्पा (सोआ), बृहती (बड़ी कटेरी) का पुष्पोद्भूत (फल) एवं तगर के कल्क के साथ दूध मिलाकर तैल सिद्ध करें। इस तैल का नस्य ऊर्ध्वजत्रु-विकारों में अतिश्रेष्ठ माना जाता है। यहां 'पुष्पोद्भूत' शब्द 'फल' के लिए प्रयुक्त किया है, क्योंकि पुष्प से फल उद्भूत (पैदा) होता है।

(शल्यतन्त्रम्)

अर्श, व्रण, गण्डमालादि में हितकर मुष्ककक्षार व क्षारतैल (योग सं.- ७०)

क्वाथे मुष्ककभस्मनोऽनलशिखादग्धं क्षिपेच्छङ्खकं
तत्तेनैव पुनर्जलेन विपचेत् क्षारं स तैले विधिः।
युञ्ज्यात्तद् व्रणदुष्टिषु व्रणरुजास्वर्शस्सु नाडीषु च
त्वग्दोषेषु भगन्दरे च विविधे कण्ठामये च स्थिरे।।६१।।

६०. तैलं सिद्धं- ति., पक्वं तैलं- इ.। नस्यश्रेष्ठम्-, नस्यं श्रेष्ठं- ति., इ.।
६१. योज्यं तद्- इ., युञ्ज्यात्तद्- ति.। व्रणकुष्ठिषु- भो.२, व्रणदुष्टिषु- ति., इ.। भगन्दरे च विविधे कण्ठामये च स्थिते- ति., भगन्दरेषु विविधे कण्ठामये च स्थिरे- ति., भगन्दरेषु विविधे कण्ड्वामये च स्थिरे,'कण्ठामये' इत्यस्य स्थाने 'कण्ड्वामये' इति मैसूर-संस्करणगतः पाठः।

मुष्कक के काष्ठ को जलाकर भस्म बनाएं, उस भस्म को जल के अन्दर डालकर पकाएं; तदनन्तर वस्त्र से छानकर क्वाथ ग्रहण करें। उस क्वाथ में अग्निशिखा में दग्ध (जलाया हुआ) शङ्ख डाल दें तथा उसका क्षार ग्रहण करें। इसे भी इसी जल के साथ पकाएं। इस प्रकार क्षार बनाने की जो विधि बताई है, वही तैल सिद्ध करने में भी प्रयुक्त करनी चाहिए। इस तैल का प्रयोग व्रणदुष्टि (घाव की विकृति) एवं व्रणरुजा (घाव की पीड़ा) में करना चाहिए। इसी प्रकार क्लेदयुक्त (चिपचिपाहट सहित), चिरप्रवृत्त (पुराने) नाडीव्रण (नासूर) में भी इसका प्रयोग करना चाहिए। यह त्वग्दोष (त्वचा के विकार), सभी प्रकार के भगन्दर और सभी प्रकार के स्थिर (चिरकाल तक रहने वाले) गण्डमाला आदि कण्ठरोगों में भी बहुत हितकर होता है।

इस योग में प्रयुक्त क्षार का विवरण 'अमितप्रभ' के 'चिकित्सातिशय' नामक ग्रन्थ में भी निबद्ध किया गया था, जो 'चक्रदत्त' में उद्धृत है। उसे यहां प्रस्तुत किया जा रहा है-

तोये कालकमुष्ककस्य विपचेद् भस्माढकं षड्-गुणे
पात्रे लोहमये दृढे विपुलधीर्दर्व्या शनैर्घट्टयन्।
दग्ध्वाऽग्नौ बहु शङ्खनाभिशकलान् पूतावशेषे क्षिपेद्
यद्येरण्डजनालमेष दहति क्षारो वरो वाक्शतात्।।

प्रायस्त्रिभागशिष्टेऽस्मिन्नच्छपैच्छिल्यरक्तता।
सञ्जायते तदास्राव्य क्षाराम्भो ग्राह्यमिष्यते।।

तुर्येणाष्टमकेन षोडशभवेनांशेन संव्यूहिमो।
मध्यः श्रेष्ठ इति क्रमेण विहितः क्षारोदकाच्छङ्खकः।।

नातिसान्द्रो नातितनुः क्षारपाक उदाहृतः।
दुर्नामकादौ निर्दिष्टः क्षारोऽयं प्रतिसारणः।।

पानीयो यस्तु गुल्मादौ तं वारानेकविंशतिम्।
स्रावयेत् षड्गुणे तोये केचिदाहुश्चतुर्गुणे।।

तोय इत्यादि क्षारः ख्यातः चिकित्सातिशयाख्यग्रन्थस्यामितप्रभ-

लिखित:। षड्गुण इति योज्यं योग(शत)तन्त्रयुक्त्या।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, अर्शश्चिकित्सा- १४७-१५१, पृ. १८५)

व्रणरोपण एवं दाहनाशक तैल (योग सं.- ७१)

निशा सयष्टीमधुपद्मकोत्पलैः
प्रियङ्गुकाशाबरलोध्रचन्दनैः।
विपाच्य तैलं पयसा प्रयोजयेत्
क्षतेषु संरोहणदाहनाशनम्।।६२।।

निशा (हल्दी), यष्टी (मुलेठी), पद्मक (पद्माख), उत्पल (नीलकमल), प्रियङ्गुका (गन्धप्रियङ्गु), शाबरलोध्र एवं चन्दन (लाल चन्दन)- इन सबके कल्क को दूध के साथ मिलाकर उसमें तैल सिद्ध करें। इस प्रकार सिद्ध तैल क्षत (घाव) को भर देता है तथा दाह (जलन) को दूर कर देता है।

विविध व्रणों में हितकर तैल (योग सं.- ७२)

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुका-दार्वीनिशासारिवा-
मञ्जिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः।
सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो
गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुध्यन्ति रोहन्ति च।।६३।।

जातीपत्र (चमेली के पत्ते), निम्बपत्र एवं पटोलपत्र, कटुका (कुटकी), दार्वी (दारुहरिद्रा), निशा (हरिद्रा) सारिवा, मञ्जिष्ठा, अभय (उशीर), सिक्थ (मधूच्छिष्ट/मधुमक्खी के छत्ते का मोम), घी में भून कर शोधित

---

६२. प्रियङ्गुवासावररोध्र-, प्रियङ्गुकाशाबरलोध्र- ति., इ.। प्रयोज्यं-, प्रयोजयेत्- ति., इ., च योजयेत्- रू.। संरोपणदाह- इ., संरोहणदाह- ति.।

६३. नक्ताह्वबीजैस्तथा- ति., नक्ताह्वबीजान्वितैः-, नक्ताह्वबीजैः समैः- इ., च-र., नक्ताह्वाबीजैतथा- रू.। सर्पिः सिद्ध- च-र., सर्पिः साध्य.- रू.। शुष्यन्ति रोहन्ति- च-र., शुध्यन्ति रोहन्ति- ति., इ.।

किया तुत्थक (तूतिया), मधुक (मुलेठी), नक्ताह्वबीज (करञ्जबीज)- इन द्रव्यों के कल्क के साथ घृत सिद्ध करें। इसका अभ्यञ्जन करने से गम्भीर (गहरे) एवं पीड़ा सहित नाडीव्रण/नासूर शुद्ध हो जाते हैं तथा भर जाते हैं।

यह श्लोक भी चक्रपाणिदत्त ने अपने ग्रन्थ 'चक्रदत्त' में उद्धृत किया गया है। 'चक्रदत्त' के व्याख्याकार निश्चलकर इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से करते हैं-

जातीत्यादि **अमितप्रभस्य।** पत्रं जात्यादिभिः सम्बध्यते। कटुका कटुरोहिणी, दार्वी दारुहरिद्रा, न तु दार्वीनिशा दारुहरिद्रा। नापि रक्ताह्वबीजैरिति पाठः, तथा **चायुर्वेदसारः**-

जातीकूलकमञ्जिष्ठाऽमोघातिक्तानिशाह्वयैः।
नक्ताह्वबीजयष्ट्याह्वदार्वीसिक्थकतुत्थकैः।।
सनिम्बं साधितं सर्पिर्व्रणशोधनरोपणम्।। इति।

योगशतस्य टीका वल्लभा। सारिवा अनन्तमूलम्, अभयमुशीरमिति **चन्द्रकलाटीका,** न चेदमभया, विसर्पे- 'प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठा पद्मकागुरुचन्दनैः' इत्याद्यमेकयोगेषु, तथा गौराद्ये **भेडीय**करञ्जाद्येऽपि उशीरदर्शनात्। स्त्रीलिङ्गत्वाद् वृद्धवैद्यव्यवहाराच्चेति **बकुलः,** सिन्धूत्थपथ्यामगधोद्भवादिवत्। छन्दोनुरोधादपि लिङ्गस्यान्यथात्वदर्शनात्, 'शोथकुष्ठव्रणापहा' इति फलश्रुत्या हरीतकीति **चक्रादयः,** अत एव जातीकाद्यन्तरे 'अभया' इत्यस्ति। तथा **चन्दनभोडः**-

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः।
सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी।।
मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रोऽभया च पद्मकेशरम्।
तुत्थकं सारिवे बीजं नक्तमालस्य दापयेत्।।
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्।
विषव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कच्छुरोगिषु।।
दद्रूविसर्परोगेषु कीटदुष्टेषु सर्वथा।
सद्यः शस्त्रप्रहारेषु दग्धविद्धेषु चैव हि।।

नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणम्।
जातीकाद्यमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम्।। इति।

पूर्वव्याख्यैव ज्यायसी। अकारलोपकल्पनान्मुख्यशब्दलङ्घनाच्च न हरीतकी। त्वचो हितत्वात् पित्तप्रसादनत्वादुशीरमेव युक्तं, यदुक्तम्-

उशीरं तिक्तमधुरं द्रव्यं पित्तप्रसादनम्।
सुगन्धि विशदं शीतं छर्दिघ्नञ्च विशेषतः।। इति।

शोधनसर्पिश्च पित्तदुष्टे, यदाह **सुश्रुतः**-

पित्तप्रदुष्टान् गम्भीरान् दाहपाकप्रपीडितान्।
कार्पासीफलमिश्रेण जयच्छोधनसर्पिषा।। इति।

अत्र शोधनसर्पिः मिश्रकोक्ताजशृङ्ग्यादि- अर्कोत्तमादिसिद्धम्। गतिर्नाडी।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, व्रणशोथचिकित्सा- ७५, पृ.-६०८)

(अगदतन्त्रम् - विषचिकित्सा)

विषमूर्छित को चेतन करने वाला योग (योग सं.- ७३)

शिरीषपुष्पस्वरसेन भावितं
त्रिसप्तकृत्वो मरिचं सिताह्वयम्।
प्रयोजयेदञ्जन-पान-नावनै-
र्विमोहितानामपि सर्पदंशिनाम्।।६४।।

शिरीषपुष्प (सिरस के फूल) के स्वरस से श्वेत मरिच को २१ बार भावित करें। इसे अञ्जन, नस्य एवं पान के रूप में प्रयुक्त करें। यह योग सर्पदंश से मूर्छित व्यक्ति को भी स्वस्थ कर देता है। 'त्रिसप्तकृत्वः' का अर्थ है २१ बार। इसके स्थान पर 'सहस्रकृत्वः' पाठ भी मिलता है। यहां 'सहस्र'

६४.सहस्रकृत्वो- ति., इ., सहस्रकृत्वो- ति.१। त्रिस्ससप्तकृत्वो- इति पाठान्तनिर्देशो रूपनयनटीकायाम्- रू.।

शब्द 'अनेक' अर्थ का वाचक है। अतः 'सहस्रकृत्वः' से अनेक बार भावना देने का निर्देश है। व्यवहार में देखा जाता है कि ये भावनाएं प्रायः २१ बार दी जाती हैं। इससे औषधयोग अधिक प्रभावशाली हो जाता है।

आलर्क (पागल कुत्ते) के विष को दूर करने वाला योग (योग सं.- ७४)

तैलं तिलानां पललं गुडं च
क्षीरं तथार्कं सममेव पीतम्।
आलर्कमुग्रं विषमाशु हन्ति
सद्योभवं वायुरिवाभ्रवृन्दम्।।६५।।

तिल का तैल, पलल (तिलकल्क), गुड़ तथा अर्क (आक) का दूध- इनमें प्रत्येक को समान मात्रा में ही लें तथा एक साथ मिलाकर पान करें। यह योग आलर्कविष (पागल कुत्ते के काटने से चढ़े जहर) को वैसे ही शीघ्र नष्ट कर देता है, जैसे तीव्र वायु मेघ-समूह को तीतर-बीतर कर नष्ट कर देती है।

स्थावर-जंगम विषहर योग- १. (योग सं.- ७५)

मयूरपित्तेन च तण्डुलीयं
काकाण्डयुक्तं प्रपिबेदनल्पम्।
विषाण्यसौ स्थावरजङ्गमानि
सोपद्रवाण्यप्यचिरेण हन्ति।।६६।।

मयूरपित्त एवं काकाण्ड (शूकरशिम्बी/सुअरा सेम) के साथ तण्डुलीय मूल (चौलाई की जड़) के चूर्ण को प्रचुर मात्रा में लेकर पान करें। यह योग शरीर में उपद्रव करने वाले स्थावर एवं जङ्गम- इन दोनों प्रकार के विषों को

६५.गुडं च-, गुडश्च- रू.। क्षारं तथा चार्करसेन पीतम्-, क्षीरं तथार्कं समवेतपीतम्- ति. रू., क्षीरं तथार्कं समवेव पीतम्- इ.। सद्योद्भवं-, सद्योभवं- रू.।

६६.मयूरपित्तेन- ति., इ., रू., मयूरपिच्छेन- भो.५। तण्डुलीयकं- इ., तण्डुलीयं- ति.। विषाणि संस्थावर- ति., इ., विषाण्यसौ स्थावर-, विषाणि स स्थावर- रू.।

शीघ्र ही नष्ट कर देता है। यहां 'तण्डुलीय' शब्द से आगमानुसार तण्डुलीय-मूल का ही ग्रहण किया जाता है। इस योग में इसकी मात्रा प्रचुर बताई गई है। अतः मयूरपित्त व काकाण्ड को अल्प मात्रा में ही लेना चाहिए; क्योंकि मयूरपित्त अति तीक्ष्ण होता है तथा काकाण्ड उपविष में गिना जाता है।

स्थावर-जंगम विषहर योग-२. (योग सं.- ७६)

आगारधूमो महिषाक्षयुक्तः
सवाजिगन्धोऽन्विततण्डुलीयः।
गोमूत्रपिष्टो ह्यगदो निहन्ति
विषाणि सस्थावरजङ्गमानि।।६७।।

गुग्गल, अश्वगन्धा एवं तण्डुलीय मूल (चौलाई की जड़) से युक्त तथा गोमूत्र के साथ पीसा हुआ आगारधूम (गृहधूम) एक विशिष्ट अगद (विषनाशक योग) है। यह स्थावर एवं जङ्गम विषों को नष्ट कर देता है।

विष एवं कृत्या आदि का निवारक 'चन्द्रोदय' अगद (योग सं.- ७७)

मांसीसेव्यालकौन्तीजलजलदशिलारोचनापद्मकेशी-
स्पृक्काचण्डाहरिद्रागदसितपलितासृग्लतापद्मकैलाः।
तुल्यं गौराष्टभागाश्चतुरिभकुसुमा वर्त्तयः सर्वयोग्याः
कृत्याऽलक्ष्मीपिशाचज्वरविषमगरान्घ्नन्ति चन्द्रोदयाख्याः।।६८।।

६७.गोमूत्रपिष्टैर्ह्य.-, गोमूत्रपिष्टो ह्य.- ति., इ.। संस्थावर- ति., इ., सस्थावर-। सवाजिगन्धा-सवाजिगन्धोऽन्वित तण्डुलीय, सवाजिगन्धा घृततण्डुलीयकः- इ.। सवाजिगन्धा-क्रिमितण्डुलीय- रू.।

६८.जलजलज-, जलजलद- ति., इ.। हरिद्रागदसितफलिनीसृग्लता.-, हरिद्रासित-गदपलितासृग्लता.- ति., इ.। सर्वयोगाः- ति., सर्वयोग्याः- रू., सर्वभोग्या- इ.। ज्वरविषजगदान्- इ., ज्वरविषमगरान्- ति., चन्द्रोदयाख्यः- इ., चन्द्रोदयाख्याः- ति.।

मांसी (जटामांसी), सेव्य (उशीर/खस), अल (हरताल), कौन्ती (हरेणुका), जल (बालक/सुगन्धबाला), जलद (मुस्ता), शिला (मनश्शिला), रोचना (गोरोचना), पद्म (उत्पल), केशी (भूतकेशी/निर्गुण्डी), स्पृक्का (गन्धद्रव्यविशेष), चण्डा (राल), हरिद्रा (दारुहल्दी), गद (कुष्ठ/कूठ), सित (श्वेतचन्दन), पलित (शैलेयक) असृक् (कुंकुम), लता (प्रियंङ्गुलता), पद्मक (पद्माख), एला (छोटी इलायची)- इन ओषधियों को सम मात्रा में लें। श्वेत सर्षप के आठ भाग लें। अर्थात् जैसे मांसी आदि का एक-एक भाग लिया है वैसे गौर सर्षप के आठ भाग लें। इसी प्रकार इभकुसुम (नागकेसर) के चार भाग लें। इन्हें पीसकर वर्त्तियाँ बनाएं। 'चन्द्रोदय अगद' नाम से विख्यात ये वर्त्तियां कृत्या (अनुष्ठान से उत्पन्न राक्षसी), अलक्ष्मी, पिशाच, ज्वर एवं विकट विष को नष्ट कर देती हैं। ये वर्त्तियां सर्वयोग्या अर्थात्- पान, नस्य, लेपन आदि सभी प्रकार से उपयोग में आने योग्य होती हैं।

(भूतविद्या)

कृत्या, उन्माद, ग्रहावेश आदि का नाशक अगद (योग सं.- ७८)

सिद्धार्थत्रिफलाशिरीषकटभीश्वेताकरञ्जामरं
मञ्जिष्ठा रजनीद्वयं त्रिकटुकं श्यामावचाहिङ्गु च।
शस्तं छागलमूत्रपिष्टमगदं सर्वग्रहोच्चाटनं
कृत्योन्मादविषज्वरप्रशमनं पानादिभिर्योजितम्।।६९।।

सिद्धार्थ (सफेद सरसों), त्रिफला, शिरीष (सिरस की फली व बीज), कटभी, श्वेता (श्वेतस्यन्द/अपराजिता), करञ्ज (चिरबिल्व), अमर (देवदारु), मञ्जिष्ठा, दोनों हल्दियाँ- (हल्दी एवं दारुहल्दी), त्रिकटु, श्यामा

६९. करञ्जामृता- इ., करञ्जरैः, करञ्जामरं-।०सर्पग्रहोच्चाटनं- इ., ०सर्वग्रहोत्सादनं.- ति.। ० हिङ्गुजं- ति., ०हिङ्गुभिः-, ०हिङ्गु च- इ., रू.।

(प्रियङ्गु), वचा एवं हिंगु- इन द्रव्यों को बकरी के मूत्र के साथ पीस लें। इस प्रकार तैयार किया गया यह अगद (विषनाशक योग) पान आदि के द्वारा प्रयोग में लाने पर सभी ग्रहों का उच्चाटन (बाधानाश) कर लेता है तथा कृत्या (अनुष्ठान से उत्पन्न राक्षसी), उन्माद, विष एवं ज्वर को शान्त कर देता है।

उन्माद, पिशाचावेश आदि निवारक धूप (योग सं.- ७९)

कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतकै-
स्त्वग्वांशीवृकदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोचनैः।
नागेन्द्रद्विजशृङ्गहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैश्च धूपः कृतः
स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नः स्मृतः।।७०।।

कार्पासास्थि (कपास के बीज), मयूरपिच्छ (मोर के पंख), बृहती (कण्टकारी), निर्माल्य (शिवनिर्माल्य/शिवमूर्त्ति पर चढ़ाएं हुए पुष्प), पिण्डीतक (मदनफल), वांशीत्वग्- (बांस की छाल), वृकदंशविट् (बिलाव का मल/विष्ठा), वचा, केश (मनुष्य के बाल), तुष (जौ के तुष), अहिनिर्मोचन (साँप की केंचुली), नागेन्द्रद्विज (हाथी दांत), शृंग (गाय का सींग), हिङ्गु (हींग), मरिच (कालीमिर्च)- इन द्रव्यों को सम भाग में लेकर धूप करें। यह धूप ग्रहबाधा एवं उन्माद को नष्ट करती है तथा पिशाच, राक्षस, एवं असुरों के आवेश (शरीरगत प्रभाव) को दूर करती है। यह ज्वर को दूर करने में अति प्रभावशाली है। यहां 'केश' शब्द से मनुष्य के बालों का ग्रहण होता है। अष्टाङ्ग-संग्रह आदि में भी धूपन-द्रव्यों में मनुष्य-केशों का उल्लेख मिलता है। रूपनयन-टीका में भी यही अर्थ किया है, परन्तु निश्चलकर ने यहां 'केश' शब्द से 'भूतकेशी' का ग्रहण किया है।

७०.०मयूरपत्र- ति., इ., ०मयूरपिच्छ-। ०पिण्डीतक- ति., इ., ०पिण्डीतकै- च-र.। ०त्वङ्मांसी- इ., रू., ० त्वग्वांशी- च-र.।०निर्मोचकैः- ति., इ., ०निर्मोचनैः- रू., ० निर्मोककैः- च-र.। ०तुल्यैः कृतं धूपनम्- इ., रू., ०तुल्यैस्तु धूपः कृतः-, तुल्यैश्च धूपः कृतः- च-र.।० ज्वरघ्नः परः- च-र., ज्वरघ्नः स्मृतः-, ०ज्वरघ्नं परं- ति. इ.।

यह श्लोक भी चक्रपाणिदत्त ने अपने ग्रन्थ 'चक्रदत्त' में उद्धृत किया गया है। 'चक्रदत्त' के व्याख्याकार निश्चलकर इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से करते हैं-

कार्पासास्थीत्यादि ख्यातममितप्रभस्य। निर्माल्यं शिवस्य। पिण्डीतकं मदनफलम्, त्वग्वांशी वंशभवा त्वक् वंशलोनीति यावत्। विडालमलम्। केशो भूतकेशीति। (चक्रदत्त-रत्नप्रभा, उन्मादचिकित्सा- ५०, पृ. ३३३-३३४)

भूतराव घृत (योग सं.- ८०)

त्रिकटुकदलकुङ्कुमग्रन्थिकक्षारसिंही-
निशादारुसिद्धार्थयुग्माम्बुशक्राह्वयैः।
सितलशुनफलत्रिकोशीरतिक्तावचा-
तुत्थयष्टीबलालोहितैलाशिलापद्मकैः।
दधितगरमधूकसारप्रियाह्वाविषाख्याविषा-
तार्क्ष्यशैलैः सचव्यामयैः कल्कितैः।
घृतमनवमशेषमूत्रांशसिद्धं मतं भूतरावाह्वयं
पानतस्तद् ग्रहघ्नं परम्।।७१।।

त्रिकटु, दल (तमालपत्र), कुंकुम (केसर), ग्रन्थिक (पिप्पलीमूल), क्षार (यवक्षार), सिंही (बृहती/कण्टकारी), निशा (हल्दी), दारु (देवदारु), सिद्धार्थयुग्म (दोनों प्रकार की सरसों- सफेद एवं काली), अम्बु (बालक/सुगन्धबाला), शक्राह्व (इन्द्रजौ), सित (श्वेत चन्दन), लशुन, फलत्रिक (त्रिफला), उशीर (खस), तिक्ता (कुटकी), वचा (उग्रा), तुत्थ (तूतिया), यष्टीमधु (मुलेठी), बला (खरैंटी), लोहिता (मञ्जिष्ठा), एला (छोटी इलायची) शिला (मैनसिल) पद्मक (पद्माख), दधि (श्रीवासक), तगर,

७१.निशादारु- ति., निशाकुष्ठ- इ., निशाकाष्ठ- मै.। लोहिताख्या- इ., लोहितैला- ति.। घृतमभिनवमभिशेषमूत्रैस्तु सिद्धं स्मृतं- मै., घृतमनवमशेषमूत्रांशसिद्धं मतं- रू.। पानत ग्रहघ्नं परम्- रू.।

मधूकसार, प्रियाह्वा (प्रियङ्गु/श्यामा), विषाख्या (शुक्ल कन्द वाली अतिविषा), विषा (कृष्ण कन्द वाली अतिविषा), तार्क्ष्यशैल (रसाञ्जन), चव्य (चविका), आमय (कुष्ठ/कूठ)- इन सबको मिलाकर कल्क बनाएं, साथ में आठ प्रकार के औषधोपयोगी मूत्र भी लें। इनमें प्रत्येक की मात्रा घृत के बराबर होगी। साथ में जल भी घृत के बराबर लें। इनके साथ एक वर्ष पुराना गाय का घृत लेकर पकाएं। प्रकार सिद्ध किया गया यह 'भूतराव' नामक घृत नस्य एवं पान के रूप में प्रयोग करने पर परम भूतघ्न होता है- अर्थात् भूतबाधा को नष्ट कर देता है।

आयुर्वेद में आठ प्रकार के मूत्रों का औषधों में प्रयोग होता है। ये इस प्रकार हैं- गाय, भैंस, भेड़, बकरी, अश्वा, ऊष्ट्री, हथिनी एवं गर्दभी का मूत्र।

महाभूतराव घृत (योग सं.- ८१)

नतमधुककरञ्जलाक्षापटोलीसमङ्गावचापाटली-
हिङ्गुसिद्धार्थसिंहीनिशायुगलतारोहिणी-
बदरकटुफलत्रिकाकाण्डदारुकृमिघ्नाजगन्धामरा-
ङ्कोलकोशातकीशिग्रुनिम्बाम्बुदेन्द्राह्वयैः।
गदशुकतरुपुष्पबीजाम्बुयष्ट्यद्रिकर्णीनिकुम्भाग्नि-
बिल्वैः समैः कल्कितैर्मूत्रवर्गेण सिद्धं घृतं
चिरविनिहितमाशु सर्वैः क्रमैर्योजितं हन्ति सर्व-
ग्रहोन्मादकुष्ठज्वरांस्तन्महाभूतरावं स्मृतम्।।७२।।

नत (तगर), मधुक (महुआ), करञ्ज (नक्ताह्व), लाक्षा (लाख), पटोला, हिङ्गु (हींग), सिद्धार्थ (सफेद सरसों), सिंही, निशायुग् (हल्दी एवं दारुहल्दी), लता! (प्रियङ्गुलता), रोहिणी, बदर (बेर), कटु (काली मिर्च),

७२.मदनफलकटुत्रिक- इ., बदरकटुफलत्रिका- रू. (उदयपुर-हस्तलेख)। ०गन्धामरा- अ., इ., ०गन्धाभया- रू.। ०पाटली- इ., पाटला- रू.। 'काण्ड' इत्यस्य स्थाने 'कान्त' इति स्यात्, केशरार्थकः। द्रष्टव्य- भैषजरत्नावली, महाभूतराव घृत, भाग-२ पृ.- ११९१;

फलत्रिका (त्रिफला), काण्ड ? कान्त-(केशर), दारु (देवदारु), क्रिमिघ्न (विडङ्ग), अजगन्धा (जङ्गली अयवायन), अभया (हरड़), अङ्कोल (अङ्कोल मूल की छाल), कोशातकी (कटुकोशातकी/ कड़वी तोरी), शिग्रु (सहिजन की फली), निम्ब (नीम के पत्ते), अम्बुद (मुस्ता), इन्द्राह्वय (इन्द्रजौ), गद (कुष्ठ/कूठ), शुकतरुपुष्पबीज (शिरीष के फूल व बीज), अम्बु (बालक/सुगन्धबाला), यष्टि (मुलेठी), अद्रिकर्णी (श्वेतस्यन्दा/श्वेत अपराजिता), निकुम्भा (दन्ती), अग्नि (चित्रक) एवं बिल्व (कच्चा बेलफल)- इन्हें सममात्रा में लेकर कल्क बनाएं तथा आठों प्रकार के मूत्र एवं जल भी पूर्व श्लोक में बताई गई मात्रा के अनुसार लें। एक वर्ष पुराना गाय का घी लेकर उसे इनके साथ सिद्ध करें। यह 'महाभूतराव' नामक घृत पान, नस्य, अञ्जन आदि के रूप में प्रयोग करने पर सर्वग्रह, उन्माद, कुष्ठ एवं विविध प्रकार के ज्वरों को नष्ट कर देता है।

(बालतन्त्रम्/शिशुरोग-चिकित्सा)

शिशु के लिए अतिसार-नाशक क्वाथ (योग सं.- ८२)

दार्वी हरिद्रा कुटजस्य बीजं
शृङ्गी च यष्टीमधुकं च तुल्यम्।
क्वाथः शिशोः स्तन्यकृते च दोषे
सर्वातिसारेषु च सर्वदेष्टः।।७३।।

दार्वी (दारुहल्दी), हरिद्रा (हल्दी), कुटज के बीज (इन्द्रजौ), शृङ्गी (कर्कटश्रृंगी/काकड़ासिंगी), यष्टिमधुक (मुलेठी)- इनको समान मात्रा में लेकर क्वाथ बनाएं। यह क्वाथ माता के दूषित स्तन्य (दूध) से उत्पन्न शिशुरोगों को नष्ट करता है तथा शिशुओं के सभी प्रकार के अतिसार (दस्त) में भी सदैव अत्यन्त हितकर होता है।

---

७३. सिंही सयष्टीमधुकं.- ति., सिंही च यष्टीमधुका.- इ., शृङ्गी च यष्टीमधुकं.-। नित्यमिष्टम्-, सर्वथेष्टम् - इ., सर्वदेष्टः- ति. रू.।

अतिसारग्रस्त शिशुओं के लिए हितकर क्वाथ एवं अवलेह (योग सं.- ८३-८४)

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां
जलं सलोध्रं गजपिप्पली च।
क्वाथावलेहौ मधुना प्रशस्तौ
बालेषु योज्यावतिसारितेषु।।७४।।

कच्चा बिल्वफल, धातकीपुष्प, जल (सुगन्धबाला), शाबर लोध्र एवं गजपिप्पली का क्वाथ बनाकर शीतल होने पर मधु के साथ अतिसारग्रस्त बालकों को पिलाएं। इसी प्रकार इन्हीं ओषधियों का अवलेह बनाकर मधु के साथ चटाएं। ये दोनों योग अतिसारग्रस्त बालकों के लिए अत्यन्त हितकर एवं प्रशस्त माने जाते हैं।

कासज्वर-छर्दिनाशक अवलेह (योग सं.- ८५)

शृङ्गीं सकृष्णातिविषां विचूर्ण्य
लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम्।
कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां
समाक्षिकां चातिविषामथैकाम्।।७५।।

कास (खांसी), ज्वर (ताप), एवं छर्दि (उल्टी) से पीड़ित बालकों को शृङ्गी (कर्कटशृंगी/काकड़ासिंगी), कृष्णा (पिप्पली) एवं अतिविषा (अतीस) का चूर्ण बनाकर मधु के साथ चटाना चाहिए। इसी प्रकार अतिविषा के चूर्ण का मधु के साथ अवलेहन करवाने से भी बालकों के कास, ज्वर एवं छर्दि रोग नष्ट हो जाते हैं।

७४.सुपुष्पाणि-, च पुष्पाणि- ति., इ.। च लोध्रं- ति., सलोध्रं- इ.। प्रशस्तौ-, विमिश्रौ- ति., इ.।

७५.शृङ्गीं सकृष्णातिविषां विचूर्ण्य लेह्यं-, शृङ्गां सकृष्णातिविषां विचूर्ण्य लेहं- इ., शृङ्गी-सकृष्णातिविषागुडूचीलेहं- ति.। वातिविषां-, चातिविषां- ति., इ.।

(रसायन-वाजीकरणम्)

यहां तक रोगों की चिकित्सा हेतु औषध योग बताए गए हैं। आयुर्वेद में दो प्रकार के औषध माने जाते हैं- १. रोगहर तथा २. स्वस्थ व्यक्ति के लिए ऊर्जस्कर (शक्ति व स्फूर्ति बढ़ाने वाले)। ऊर्जस्कर औषध के भी दो भेद माने गए हैं- रसायन एवं वाजीकरण। जरा (वृद्धावस्था) के प्रभाव को रोककर शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देने वाले औषध रसायन कहलाते हैं तथा शुक्र की शुद्धि व पुष्टि कर प्रजनन-सामर्थ्य को बढ़ाने वाले औषध वाजीकरण कहलाते हैं। इस प्रकरण में इन दोनों का वर्णन किया जा रहा है-

धात्रीचूर्ण रसायन (योग सं.- ८६)

धात्रीचूर्णस्य कंसं स्वरसपरिगतं क्षौद्रसर्पिः समांशं
कृष्णामानीसिताष्टप्रसृतिसमयुतं स्थापितं धान्यराशौ।
वर्षान्ते तत्समश्नन् भवति विपलितो रूपवर्णप्रभावा-
न्निर्व्याधिर्बुद्धिमेधास्मृतिवचनबलस्थैर्यसत्त्वैरुपेतः।।७६।।

आंवले के रस से युक्त आंवले का चूर्ण एक कंस परिमाण में लें। इसके अतिरिक्त समान मात्रा में ६४-६४ पल घृत व मधु लें। कृष्णा (पिप्पली) का मानी परिमाण (आठ पल) लें। शर्करा के १६ पल लें। इन सबको आमलकी चूर्ण के साथ मिलाएं तथा पात्र में भरकर धान्यराशि में दबाकर रख दें। इसे वर्षाकाल अर्थात् चौमासे तक वही रखा रहने दें; तदनन्तर निकालकर सेवन करें। इसका सेवन करने से व्यक्ति पलित (केशों के श्वेतपन) से रहित होकर रूप, वर्ण एवं कान्ति से शोभित हो जाता है तथा रोगरहित होकर बुद्धि, मेधा, स्मृति, वचनशक्ति, बल, स्थैर्य (दृढ़ता) एवं सत्त्व (उत्साह) से सम्पन्न हो जाता है।

---

७६. ०प्रसृतिसमयुतं.-, ० प्रसृतयुतमिदं.- इ., प्रसृतसममिदं.-ति.। भस्मराशौ- इ., धान्यराशौ- ति.। विपलितो वर्णरूपप्रभावान्निर्व्याधि- ति., विपलितो रूपवर्णप्रभावी निर्व्याधि- इ.।

मधुक रसायन/ वाजीकरण योग (योग सं.- ८७)

मधुकं मधुना घृतेन च प्रलिहन् क्षीरमनु प्रयोजयेत्।
लभतेऽपि च नात्मनः क्षयं प्रमदानां प्रियतां च गच्छति।।७७।।

मधुक (मुलेठी) के चूर्ण का घृत व मधु के साथ लेहन कर ऊपर से दुग्ध पान करें। इससे व्यक्ति शुक्रक्षय का अनुभव नहीं करता तथा नारियों का प्रिय बन जाता है।

त्रिफला रसायन/वाजीकरण योग (योग सं.- ८८-९२)

यष्टीतुगासैन्धवपिप्पलीभिः
सशर्कराभिस्त्रिफला प्रयुक्ता।
आयुःप्रदा वृष्यतमातिमेध्या
भवेज्जराव्याधिविनाशनी च।।७८।।

यष्टि (मुलेठी), तुगा (वंशलोचन), सैन्धव लवण, पिप्पली एवं शर्करा के साथ त्रिफला का प्रयोग करना चाहिए। यहां त्रिफला के साथ पृथक्-पृथक् उक्त ओषधियां मिलाने से पाँच योग बनते हैं। इन योगों में प्रयुक्त त्रिफला चूर्ण आयुप्रद, वृष्यतम तथा अति मेध्य (मेधा के लिए अत्यन्त हितकर) होता है। यह जरा (वृद्धावस्था) के प्रभाव एवं अन्य व्याधियों को भी नष्ट कर देता है।

श्वदंष्ट्रादि रसायन/ वाजीकरण योग (योग सं.- ९३)

चूर्णं श्वदंष्ट्रामलकाऽमृतानां
लिहन् ससर्पिर्मधुभागयुक्तम्।
वृष्यः स्थिरः शान्तविकारदुःखः
समाः शतं जीवति कृष्णकेशः।।७९।।

७७.लभतेऽपि च नात्मनः क्षयं- ति., लभते च न धातुसंक्षयं- इ.। प्रमदानां च मतं च- इ., प्रमदानां प्रियतां च- ति.।

७८. भवेज्जराव्याधिविनाशिनी- च., ति., इ., भवेज्वरव्याधिविनाशनं च- मै.।

७९.लेह्यं ससर्पिस्सितभागयुक्तं.-, लिहेत् ससर्पिमधुभागयुक्तं.- इ., लिहन् ससर्पिमधुना च युक्तं.- ति.। समाश्शतं-, समाशतं- ति., इ.।

श्वदंष्ट्रा (गोखरू), आमलक (आंवला) एवं अमृता (गिलोय) का चूर्ण घृत एवं मधु के साथ लेना चाहिए। यह वृष्य (शुक्रवर्द्धक) शरीर में स्थिरता (दृढता) लाता है तथा नाना विकारों के दु:ख को नष्ट करता है। इसका सेवन करने वाला व्यक्ति कृष्णकेश (काले बालों वाला होकर) सौ वर्ष तक जीता है।

(पञ्चकर्म)

कण्ठ आदि के रोगों का नाशक वमनयोग (योग सं.- ९४)

यष्टीकषायो लवणाग्र्ययुक्त:
कलिङ्गकृष्णाफलकल्कमिश्र:।
सक्षौद्रमेतद् वमनं प्रयोज्यं
कण्ठामयास्यश्रवणामयेषु।।८०।।

यष्टि (मुलेठी) का क्वाथ बनाकर उसमें सैन्धव लवण मिलाएं। तत्पश्चात् इसमें कलिङ्ग (इन्द्रजौ), कृष्णा (पिप्पली) एवं मदनफल का कल्क मिलाकर मधु के साथ पान करें। यह वमनकारक योग कण्ठरोग, मुखरोग एवं कर्णरोगों में अत्यन्त हितकारक है।

विविधरोग-नाशक विरेचन योग (योग सं.- ९५-९६)

हरीतकीभि: क्वथितं सुवीरं
दन्त्यर्द्धकृष्णाविडचूर्णयुक्तम्।
विरेचनं सोरुबुतैलमेत-
न्निरत्ययं योज्यमथामयघ्नम्।।८१।।

८०. यष्टीकषायं लवणोग्रयुक्तं, मिश्रं-, यष्टीकषायं लवणाग्रयुक्तं, मिश्रम्- इ., यष्टीकषायो लवणोग्रयुक्त:, मिश्र:-ति., लवणाग्र्ययुक्त:- रू.। वमने प्रयोज्यं- इ., वमनं प्रशस्तं- ति.। घ्राणास्यकण्ठश्रवणामयेषु- इ., कण्ठामयास्यश्रवणामयेषु- ति.।

८१. हरीतकीभि: क्वथिते समाने दन्त्यग्निकृष्णाबिडचूर्णयुक्तम्। विरेचनं सोरुबुतैलमिश्रं निरत्ययं योज्यमथामयघ्नम्-, सुवीरं दन्त्यंघ्रि- इ.। सुवीरं दन्त्यर्द्ध- ति.। अयं श्लोको रत्नप्रभायामित्थं पठ्यते- हरीतकीभि: क्वथित: कषायो दन्त्यग्निकृष्णाबिड-चूर्णयुक्त:। विरेचनं वा रुबुतैलमिश्रं निरत्ययं योज्यमथामयघ्नम्।। इत्यमितप्रभस्य।।

विरेचन के लिए समुचित मात्रा में दन्ती का चूर्ण लें। इससे आधी मात्रा में कृष्णा (पिप्पली) एवं विड लवण का चूर्ण लें- अर्थात् जितना दन्ती का चूर्ण हो उससे आधा इन दोनों का मिश्रित चूर्ण होना चाहिए। इस चूर्ण को हरीतकी (हरड़) के साथ क्वथित सुवीर (काञ्जी) में मिलाकर एरण्ड तैल के साथ पीना चाहिए। यह उत्तम विरेचन नाना रोगों को नष्ट करता है।

यह श्लोक चक्रदत्त के 'एरण्डतैलं त्रिफलाक्वाथेन०' (चक्रदत्त, विरेकाधिकार-१६, पृ.८३२) की व्याख्या करते हुए रत्नप्रभाकार निश्चलकर ने इस प्रकार उद्धृत किया है-

अत्रान्तरे बोध्यमिदम्-

हरीतकीभिः क्वथितः कषायो दन्त्यग्निकृष्णाबिडचूर्णयुक्तः।
विरेचनं वा रुबुतैलमिश्रं निरत्ययं योज्यमथामयघ्नम्।। **इत्यमितप्रभस्य।**

वातरोगहर वस्तियोग (योग सं.- ९७)

रास्नाराठफलत्रयामृतलतायुक्पञ्चमूलीबला-
माषक्वाथयुतः सतैललवणक्षौद्रः ससर्पिर्गुडः।
पुष्पाह्वाघनबिल्वकुष्ठफलिनीकृष्णावचाकल्कितो
वस्तिः काञ्जिकदुग्धमूत्रसहितो वातामयेभ्यो हितः।।८२।।

रास्ना (सनाय), राठ (मदनफल), फलत्रय (त्रिफला), अमृतलता (गिलोय), पञ्चमूलीयुक् अर्थात् दोनों पञ्चमूल- (**लघुपञ्चमूल**- शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, **बृहत्पञ्चमूल**- बिल्व, अग्निमन्थ, श्योनाक, पाटला, गम्भारी), बला (खरैंटी), माष (उड़द)- इनके क्वाथ से युक्त तथा तिल का तेल, सैन्धव लवण, मधु, घृत व गुड़ मिलाकर तैयार की

८२.माषक्वाथयुतं सतैललवणं क्षौद्रं ससर्पिर्गुडैः- मै., मांसीक्वाथयुतः सतैललवणः क्षौद्रः ससर्पिर्गुडः- ति., मांसक्वाथयुतः सतैललवणक्षौद्रांशसर्पिर्गुडः- इ., मांसक्वाथकृतः सतैललवणक्षौद्रः ससर्पिर्गुडः- रू.। दुग्धमूत्रसहितोः- इ., मूत्रदुग्धसहितो- ति.।

गई एवं पुष्पाह्वा (शतपुष्पा/सौंफ), घन (मुस्ता), बिल्वफल, कुष्ठ (कूठ), फलिनी (प्रियङ्गु), कृष्णा (पिप्पली) और वचा के कल्क से मिश्रित वस्ति वातरोगों के लिए अत्यन्त हितकर होती है।

वातनाशक अनुवासन योग (स्नेह वस्ति) (योग सं.- ९८)

तैलं बलाक्वथनकल्कसुगन्धिगर्भं
सिद्धं पयोदधितुषोदकमस्तुचुक्रैः।
तद्वत्सहाचरसरण्यमृतावरीभिः
प्रत्येकपक्वमनुवासनमीरणघ्नम्।।८३।।

बला के क्वाथ एवं कल्क तथा अगरु, चन्दन, एला आदि सुगन्धित द्रव्यों व दूध, दही, तुषोदक, काञ्जी, मस्तु और चुक्र (शुक्त/सिरका) के साथ सिद्ध तैल की वस्ति वातनाशक होती है। इसी प्रकार सहाचर, सरणी (प्रसारणी), अमृता (गिलोय) एवं शतावरी- इनमें से किसी एक के साथ सिद्ध किए तैल की वस्ति भी वातनाशक होती है।

ऊर्ध्वजत्रुरोगहर शिरोविरेचन/नस्य (योग सं.- ९९-१००)

नस्यं विदध्याद् गुडनागरं वा
ससैन्धवां मागधिकामथो वा।
घ्राणास्यमन्याहनुबाहुपृष्ठ-
शिरोऽक्षिरोगश्रवणामयेषु।।८४।।

---

८३. बलाक्वथित-इ., बलाक्वथन- ति.। मस्तुतक्रै- मै., मस्तुचुक्रैः- ति., इ.। तद्वत्कुरण्टक- मै., तद्वत्सहाचर- इ., रू.। प्रत्येकसिद्ध- मै., प्रत्येकपक्व.- ति., इ.।

८४. गुडनागराभ्यां- मै., गुडनागरं वा- ति., इ., रू.। ससैन्धवं मागधिकं तथैव- मै., ससैन्धवं मागधिकामथो वा- ति., इ., रू.। मन्याहनुमध्यपृष्ठ-.., मन्याहनुबाहुपृष्ठ- इ., ति., रू.। शिरोऽक्षिरोग.-, शिरोऽक्षिकण्ठ.- इ., ति., रू.। मागधिकां तथैव- मै., मागधिकामथो वा- ति., इ., रू.।

घ्राण (नासिका), मुख, मन्या (ग्रीवा की नाड़ी), हनु (ठोडी) बाहु (भुजा), पृष्ठ (पीठ), सिर, नेत्र, कण्ठ तथा कान के रोगों में गुड़ एवं नागर (शुण्ठी) को जल के साथ पीसकर नस्य के रूप में देना चाहिए। इसी प्रकार सैन्धव लवण एवं पिप्पली को जल में पीसकर नस्य देना चाहिए। इनसे पूर्वोक्त अंगों के रोग नष्ट हो जाते हैं।

इसके अनन्तर पाण्डिचेरी-संस्करण के आधारभूत तिब्बती हस्तलेख में आगे लिखे चार श्लोक अतिरिक्त रूप में मिलते हैं। ये श्लोक प्रस्तुत संस्करण के आधारभूत हस्तलेखों में नहीं हैं; परन्तु उन्हें यहां प्रासंगिक व उपयोगी जानकर प्रस्तुत किया जा रहा है-

रोग-निवारण में श्रेष्ठतम ओषधियाँ- १.

श्रेष्ठः पर्पटको ज्वरेषु विहितस्तृष्णासु पञ्चाम्लको
लाजाश्छर्दिषु वस्तिजेषु गिरिजं मेहेषु धात्रीरसः।
रास्ना वातगदेषु मूत्रमुदरे प्लीहामये पिप्पली
सन्धाने कृमिहा विषे शुकतरुः शोफे तथा गुग्गुलुः।।

सभी प्रकार के ज्वरों में पर्पटक (पित्तपापड़ा) का प्रयोग उत्कृष्ट माना जाता है। पित्तादिजन्य सभी प्रकार के तृष्णा रोग में पञ्चाम्लक (बेर, अनार, विषाविल, अम्लवेत, निम्बू) का प्रयोग अति उत्तम होता है। सभी प्रकार के छर्दि (उल्टी) रोग में लाजा (खील) का प्रयोग श्रेष्ठ होता है। अतिमूत्र, मूत्रकृच्छ्र आदि वस्तिरोग (मूत्राशय के रोग) में गिरिज (शिलाजीत) का प्रयोग सर्वोत्तम होता है। सब प्रकार के प्रमेह में आंवले का रस सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। वातरोग में रास्ना (सनाय) सर्वोत्तम ओषधि होती है। भग्नसन्धान (टूटी हड्डी को जोड़ने) में कृमिहा अतिश्रेष्ठ माना जाता है। विष-चिकित्सा में शुकतरु (शिरीष वृक्ष/सिरस के पेड़) का पञ्चाङ्ग सर्वोत्तम विष-निवारक होता है। शोफ (सूजन) को दूर करने के लिए गुग्गुलु सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

पञ्चाम्ल- **कोलदाडिमवृक्षाम्लैरम्लवेतससंयुतैः।**
चतुरम्लं च पञ्चाम्लं मातुलुङ्गसमन्वितम्।।

(शालिग्रामौषधशब्दसागर- पृ. १०१)

कोल (बदरीफल/बेर), दाडिम (अनार), वृक्षाम्ल (विषाविल) एवं अम्लवेतस- ये चार अम्ल रस वाले द्रव्य 'चतुरम्ल' कहलाते हैं। इनके साथ मातुलुङ्ग (बिजौरा निम्बू) को मिलाने पर इन पांचों का समूह 'पञ्चाम्ल' कहा जाता है।

रोग-निवारण में श्रेष्ठतम ओषधियाँ- २.

वृषोऽस्रपित्ते कुटजोऽतिसारे
भल्लातकोऽर्शःसु गरेषु हेम।
स्थौल्येषु दारुः क्रिमिषु क्रिमिघ्नं
हरीतकी पाण्डुगदेषु शस्ता।।

रक्तपित्त में वृष (वासा/अडूसा) सर्वोत्तम ओषधि होती है। इस विषय आयुर्वेद का एक श्लोक बहुत प्रसिद्ध है-

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च।
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति।।

(चक्रदत्त, रक्तपित्तचिकित्सा- १८)

अर्थात्- वासा के उपलब्ध रहने पर एवं जीवन की आशा रहने पर रक्तपित्ती, क्षयरोगी एवं कासरोगी क्यों दुःखी होते हैं? उन्हें वासा का प्रयोग करना चाहिए; क्योंकि इससे इनके रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार रक्तपित्त में वासा की अमोघ शक्ति अति प्रसिद्ध है। इसके अनन्तर इस पद्य में कहा है कि अतिसार (दस्त) में कुटज (इन्द्रजौ) अति उत्तम होता है। अर्श (बवासीर) की चिकित्सा में भल्लातक (शोधित भिलावे) का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। गर अर्थात्- विविध औषध-संयोग से बनने वाले कृत्रिम विष में स्वर्ण का सेवन सर्वोत्तम होता है। सुवर्ण में विषनाशकता का गुण अति प्रसिद्ध है। कहा भी है-

हेम सर्वविषाण्याशु गरांश्च विनियच्छति।
न सज्जते हेमपाङ्गे विषं पद्मदलेऽम्बुवत्।।

(चरकसंहिता, चिकित्सास्थान- २३.२४०)

अर्थात् सुवर्ण सभी विष तथा गरविषों को नष्ट कर देता है। स्वर्ण (स्वर्णभस्म) का पान करने वाले व्यक्ति के अङ्गों में विष उसी प्रकार नहीं टिकता है, जैसे कमल-दल पर जल। गाय के घृत में भी स्वर्ण का अंश होता है, अत: वह भी उत्तम विष-निवारक माना जाता है।

इसके अनन्तर उक्त पद्य में कहा है कि स्थूलता (मोटापा) को दूर करने के लिए दारु (देवदारु) सर्वोत्तम ओषधि मानी जाती है। क्रिमिरोग (पेट के कीड़े आदि) की चिकित्सा में क्रिमिघ्न (विडङ्ग) सर्वोत्कृष्ट ओषधि है तथा पाण्डुरोग (पीलिया) में हरीतकी (हरड़) सर्वाधिक प्रभावशाली मानी जाती है।

गर- 'कृत्रिमं गरसञ्ज्ञन्तु क्रियते विविधौषधैः'। (अ.हृ. उत्तरस्थान- ३५.६)
विविध ओषधियों के संयोग से बनने वाला कृत्रिम विष 'गर' नाम से जाना जाता है। कैयदेव कहते हैं-

विज्ञेयं कृत्रिमं तैस्तु निर्विषैर्गरसञ्ज्ञितम्। (कै.नि. मिश्रकवर्ग-२२६)
विविध निर्विष ओषधियों से बने कृत्रिम विष को 'गर' या 'गरविष' कहते हैं।

रोग-निवारण में श्रेष्ठतम ओषधियाँ- ३.

अक्ष्यामयेषु त्रिफलां वदन्ति
सर्वेषु शूलेषु तथा रसोनम्।
कुष्ठेषु नित्यं खदिरस्य सारं
सर्वेषु कासेषु निदिग्धिकां च।।

नेत्ररोगों में वैद्यजन त्रिफला को सर्वश्रेष्ठ ओषधि बताते हैं। सभी प्रकार के शूल (दर्द) में रसोन (लशुन) सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। सभी प्रकार के

कुष्ठ रोग को दूर करने वाली ओषधियों में खदिरसार सर्वाधिक प्रभावशाली होता है। कास रोग को दूर करने में निदिग्धिका (कण्टकारी) सर्वोत्तम ओषधि है।

रोग-निवारण में श्रेष्ठतम ओषधियाँ- ४.

शंसन्ति वाजीकरणे श्वदंष्ट्रा-
मुर:क्षते नागबलां बलां वा।
रसायनेष्वामलकं सदैव
सर्वेषु रोगेषु शिलाह्वयं च।।

वाजीकरण (शुक्रपुष्टि) हेतु श्वदंष्ट्रा (गोखरू) सर्वोत्तम ओषधि है। उर:क्षत में नागबला एवं बला सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं। वृद्धावस्था के प्रभाव को रोककर शरीर में आरोग्य एवं स्फूर्त्ति लाने वाले रसायनगुण युक्त द्रव्यों में आंवला सबसे बढ़कर होता है तथा सभी रोगों को दूर करने वाली अकेली ओषधि 'शिलाजीत' मानी जाती है।

जनसामान्य हेतु दोषों के कोप-शमन का ज्ञान आवश्यक

इत्येते विधिविहिता: प्रसिद्धयोगा:
सिद्ध्यर्थं विनिगदिता भिषग्वराणाम्।
दृष्ट्वैतान् कथमचिकित्सकोऽपि युञ्ज्या-
दित्यर्थ: पुनरपि वक्ष्यतेऽत्र किञ्चित्।।८५।।

इस प्रकार योगशत नामक इस ग्रन्थ में प्रसिद्ध योगों का वर्णन किया है। इनके प्रयोग से भिषग्वरों (श्रेष्ठ वैद्यों) को चिकित्सा में सफलता मिलती है। इन योगों का परिज्ञान कर अचिकित्सक जन भी इनका प्रयोग कर सकें, एतदर्थ पुन: कुछ विशिष्ट वर्णन किया जा रहा है। अर्थात् आगे किए जा रहे वमन, विरेचन आदि के वर्णन से शरीर को शुद्ध कर सामान्य जन भी इन योगों का प्रयोग कर आरोग्यलाभ कर सकते हैं।

---

८५. इत्येवं-, इत्येते- ति., इ., आ.।

वातप्रकोप के कारण

सन्धारणाध्यशनजागरणोच्चभाष्य-
व्यायामयानकटुतिक्तकषायरूक्षैः।
चिन्ताव्यवायभयलङ्घनशोकशीतै-
र्वायुः प्रकोपमुपयाति घनागमे च।।८६।।

मल-मूत्र आदि के वेगों को धारण करना, अध्यशन (पूर्व भोजन के बिना पचे ही ऊपर से पुनः भोजन करना), जागरण (रात्रि में जागना), अधिक जोर से देर तक बोलना, अधिक व्यायाम एवं बहुत अधिक यान की सवारी से वात प्रकुपित हो जाता है। इसी प्रकार कटु (चरपरे), तिक्त (कड़वे), कषाय (कषैले), रूक्ष (रूखे) पदार्थों के सेवन से तथा चिन्ता, व्यवाय (मैथुन), भय, लङ्घन (उपवास), शोक एवं शीत (अधिक ठण्डक) से भी वातदोष प्रकुपित हो जाता है। इसके अतिरिक्त घनागम अर्थात् वर्षाकाल में स्वभावतः ही वातदोष कुपित होता है।

पित्तप्रकोप के कारण

कट्वम्लमद्यलवणोष्णविदाहितीक्ष्णैः
क्रोधातपानलपरिश्रमशुष्कशाकैः
क्षारैरजीर्णविषमाशनसेवनैश्च
पित्तं प्रकोपमुपयाति घनात्यये च।।८७।।

कटु (चरपरे), अम्ल (खट्टे), मद्य (मदिरा), लवण (नमक), उष्ण (गर्म पदार्थ), विदाही (जलन करने वाले पदार्थ) एवं तीक्ष्ण (लालमिर्च आदि तेज पदार्थ) से पित्त प्रकुपित होता है। इसी प्रकार क्रोध, आतप (धूप),

८६. ०सन्धारणानशनजागरणोच्चभाषा- इ., ०सन्धारणा., नजागरणोच्चभाषा- ति., ०सन्धारणाध्यशनजागरणप्रतापै-., ०जागरणाच्च भाष्य- आ.।

८७. परिश्रम- इ., क., भयश्रम- ति. आ.। क्षारान्नजीर्ण- ति., क्षाराद्यजीर्ण- इ., क्षारैरजीर्ण-। ०शनभोजनैश्च- ति., ०शनसैवनैश्च- इ.।

अनल (अग्नि), परिश्रम (अधिक शारीरिक श्रम), शुष्क शाक (सूखे साग) एवं क्षार से पित्त प्रकुपित हो जाता है। अजीर्णाशन एवं विषमाशन से भी पित्तदोष प्रकुपित हो जाता है। इसके अतिरिक्त घनात्यय काल (वर्षा बीतने के उपरान्त) आश्विन एवं कार्त्तिक मास वाली शरद् ऋतु में स्वभावत: ही पित्त प्रकुपित होता है।

कफप्रकोप के कारण

स्वप्नाद्दिवामधुरशीतलमत्स्यमांसै-
गुर्वम्लपिच्छिलतिलेक्षुपयोविकारै:।
स्निग्धातितृप्तिलवणोदकपानभक्षै:
श्लेष्मा प्रकोपमुपयाति तथा वसन्ते।।८८।।

दिन में सोने से, मधुर एवं शीतल पदार्थों के सेवन करने से, मत्स्य, मांस, गुरु, अम्ल, पिच्छिल गुण वाले (चिपचिपाहट युक्त) पदार्थ, तिल, इक्षुविकार (गुड़, शक्कर खाँड आदि) के निरन्तर व अधिक सेवन से कफ प्रकुपित होता है। इसी प्रकार अति स्निग्ध (बहुत चिकनाई वाले) भोजन, अतितृप्ति, लवण (नमक), उदकपान (अधिक जल पीना) तथा मोदक (लड्डू) इत्यादि भक्ष्य पदार्थों से भी कफ प्रकुपित हो जाता है। इसके अतिरिक्त वसन्त ऋतु में स्वभावत: ही कफ प्रकुपित होता है।

रोगों का मूल- त्रिदोष का असन्तुलन

त एवमेते क्रमशो द्विशो वा
दोषा: प्रवृद्धा युगपत्त्रयो वा
कुर्वन्ति रोगान् विविधान् शरीरे
संख्यानसञ्ज्ञातिगताननेकान्।।८९।।

---

८८. ०पानतक्रै:-, ०पानभक्ष्यै:- ति., ०पानभक्षै: इ.।

८९. ०इत्येवमेते- इ., ०त एवमेते- ति.। ०प्रवृद्धा- ति., ०प्रदुष्टा- आ.। ०सञ्ज्ञातिगता- आ., ०सञ्ज्ञाविगता- ति.।

पूर्व श्लोकों में वर्णित ये तीनों दोष क्रमशः एक-एक करके अथवा एक साथ दो-दो या तीनों ही जब अधिक बढ़ जाते हैं तो नाना नामों वाले अनेक रोगों को उत्पन्न कर देते हैं।

वात के कर्म

पारुष्य-सङ्कोचन-तोद-शूल-
श्यामत्व-पाण्डुत्वमथाङ्गपीडाः।।
सुप्तत्व-शीतत्व-खरत्व-शोषान्
कर्माणि वायोः प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।।९०।।

पारुष्य (शरीर में परुषता अर्थात् कठोरता/अकड़न), सङ्कोचन (अंगों में सिकुड़न), तोद (चुभन), शूल (पीड़ा), श्यामत्व (अंगों का कालापन), पाण्डुत्व (अंगों का पीलापन) एवं अंगों या जोड़ों में दर्द रहना, ये वायु (वात) के कर्म होते हैं। इसी प्रकार सुप्तत्व (हाथ, पैर आदि का सो जाना अर्थात् सुन्न होना), शीतत्व (अधिक ठण्ड लगना), खरत्व (अंगों में रूखापन एवं खुरदरापन), शोष (सूखापन)- ये सब वात के ही कर्म हैं, ऐसा आयुर्वेदज्ञ विद्वान् बतलाते हैं।

पित्त के कर्म

परिश्रमस्वेदविदाहराग-
वैगन्ध्यसंक्लेदविपाककोपान्।
प्रलापमूर्छाभ्रमपीतभावान्
पित्तस्य कर्माणि विदन्ति तज्ज्ञाः।।९१।।

बिना आयास के परिश्रम (थकान होना), स्वेद (पसीना), विदाह (जलन), राग (लालिमा), विगन्धि (शरीर में, पसीने में दुर्गन्ध आना,

९०.शूल-श्यामत्व-पाण्डुत्वमथाङ्गपीडाः- क., शूलाञ्छ्यामत्वमंगव्यथभङ्गचेष्टान्- इ.।
९१. परिश्रमः- जै.१, पस्रिव- इ.। दौर्गन्ध्यसंक्लेद- इ., वैगन्ध्यसक्लेद- ति.।

संक्लेद (शरीर में गीलापन), विपाक (किसी भी चोट या आघात वाले स्थान का शीघ्र पक जाना)- ये पित्त के कर्म हैं। इसी प्रकार क्रोध, प्रलाप (बड़बड़ाना), मूर्छा (बेहोशी), भ्रम (चक्कर आना) एवं नख, नयन, मुख आदि में पीलापन- ये भी पित्त के कर्म है, ऐसा आयुर्वेदज्ञ विद्वान् बतलाते हैं।

कफ के कर्म

श्वेतत्वशीतत्वगुरुत्वकण्डू-
स्नेहोपदेहस्तिमितत्वलेपान्।
उत्सेधसंघातचिरक्रियाश्च
कफस्य कर्माणि वदन्ति तज्ज्ञाः।।९२।।

श्वेतत्व (अंगों में श्वेतपन), शीतत्व (अंगों का शीतल रहना), गुरुत्व (शरीर का भारी होना), कण्डू (खुजली), स्नेह (शरीर में स्निग्धता), उपदेह (मुख का कफ से लिप्त रहना), स्तिमितत्व (निश्चलता/निष्क्रियता) अर्थात् स्तब्धता एवं लेप- स्रोतों का उपचय अर्थात् कफ से लिप्त रहना- ये कफ के कर्म होते हैं। इसी प्रकार उत्सेध (अंगों में उभार), संघात (अवयवों में सुश्लिष्टता अर्थात् अच्छी गठन), चिरक्रिया (मन्द गति से कार्य करने की प्रवृत्ति) ये भी कफ के कर्म होते हैं, ऐसा आयुर्वेद के विद्वान् कहते हैं।

विविध रोगों के नामकरण का मूल

एतानि लिङ्गानि च तत्कृतानां
सर्वामयानामपि नैकनाम्नाम्।
कश्चिद् भवेत् प्राप्तिविशेष एषां
सञ्ज्ञान्तरं येन तु सम्प्रयान्ति।।९३।।

९२. उत्सेधसम्पात- ति. उत्सेकसंघात- इ., उत्क्लेदसंघात- क., उत्सेधसंघात- रू.।
९३. तत्कृतानि- ति., इ., यत्कृतानां-.। सम्प्रयाति- ति., सम्प्रयान्ति- इ.।

उन (वात, पित्त एवं कफ) के असन्तुलन से उत्पन्न हुए अनेक नामों वाले नाना रोगों के मुख्यत: ये ही लिङ्ग (लक्षण) होते हैं, जो पूर्व श्लोकों में बतलाए गए हैं। इन्हीं लक्षणों में से जिस किसी की विशेष प्राप्ति हो, उसके आधार पर ही नामान्तर (अलग नाम) हो जाते हैं।

साम व्याधि के लक्षण

आलस्यतन्द्राहृदयाविशुद्धि-
दोषाप्रवृत्त्याकुलमूत्रताभि:।
गुरूदरत्वारुचिसुप्तताभि-
रामान्वितं व्याधिमुदाहरन्ति।।९४।।

आलस्य, तन्द्रा (ऊंघना), हृदय की अशुद्धि (हृदय का अवरुद्ध सा होना), दोषाप्रवृत्ति (दोष अर्थात् मल की अप्रवृत्ति= विसर्जन न होना), मूत्र का गाढ़ापन व गन्दलापन, पेट का भारीपन, अरुचि (भोजन के प्रति अनिच्छा), एवं सुप्तता (अंगों में सुन्नपन)- इन लक्षणों से आमयुक्त रोग पहचाना जाता है, अर्थात् उक्त लक्षण हों तो जानना चाहिए कि यह रोग आम सहित है। 'दोषाप्रवृत्ति' में दोष शब्द मल का वाचक है। आयुर्वेद में मल के लिए अन्यत्र भी दोष शब्द प्रयुक्त हुआ है, यथा- 'न घृतं बहुदोषाय देयं यत्र विरेचनम्'।

आम-निवारक उपाय

आमं जयेल्लङ्घनकोलपेया-
लघ्वन्नसूपौदनतिक्तयूषै:।
विरूक्षण-स्वेदन-पाचनैश्च
संशोधनैरूर्ध्वमधस्तथा च।।९५।।

---

९४. दोषप्रवृत्तिर्घनता च मूत्रे-, दोषप्रवृत्त्याकुलमूत्रता च- ति.,दोषप्रवृत्त्याकुलमूत्रताभि:- रू.। ०तद्विदुषा वदन्ति- इ., ० व्याधिमुदाहरन्ति- ति.।

९५. कोलपेया, कोष्णपेया। सूपोदन- ति., सूपोदक- इ.। तथैव- आ., तथा च- इ.।

लङ्घन (उपवास), कोलपेया (पिप्पली मिश्रित पेया अथवा कोष्ण थोड़ी-थोड़ी गर्म पेया), लघु अन्न, सूपौदन (दाल-भात), तिक्तरस वाले यूष, विरूक्षण (शरीर में रूखापन पैदा करने वाले द्रव्य), स्वेदन एवं पाचन (आम का पाचन करने वाले सोंठ, कालीमिर्च आदि) द्रव्यों से आम का निवारण करना चाहिए। इसी प्रकार ऊर्ध्वशोधन (शिरोविरेचन/नस्य) तथा अध:शोधन (विरेचन/दस्त) से भी आम का निवारण करना चाहिए।

वातशमन के उपाय

स्निग्धोष्णस्थिरवृष्यबल्यलवणस्वाद्वम्लतैलातप-
स्नानाभ्यञ्जनबस्तिमांसमदिरासंवाहनोन्मर्दनम्।
स्नेहस्वेदनिरूहनस्यशयनस्थानोपनाहादिकं
पानाहारविहारभेषजमिदं वातं प्रशान्तिं नयेत्।।९६।।

स्निग्ध, उष्ण, स्थिर, वृष्य, बल्य, लवण, स्वादु (मधुर), अम्ल (खट्टा) एवं तेलयुक्त पदार्थों से वात का शमन करना चाहिए। आतप (धूप) के सेवन, गर्म जल द्वारा स्नान, अभ्यञ्जन (तेल मालिश), बस्ति (अनुवासन बस्ति), संवाहन (हाथों से पैर आदि को दबाना/शनै:-शनै: अंगों पर आहनन करना), उन्मर्दन (अंगों को सुखपूर्वक मसलना)- इनसे भी वात का शमन होता है। इसी प्रकार स्नेहन, स्वेदन, निरूह बस्ति, नस्य, शयन, स्थान= आरामदायक स्थिति में बैठे रहना, विश्राम करना, उपनाह (पुल्टिस आदि बांधना) इत्यादि खान-पान, विहार एवं भेषज वात का शमन करते हैं।

शरीर, वाणी एवं मन की चेष्टा को 'विहार' कहते हैं। यहाँ वर्णित संवाहन आदि को विहार के अन्तर्गत समझना चाहिए।

---

९६. ०तैलान्वितै:- क., ०तैलातप- आ., ०तैलातपै: ति.। ०मर्दनै:- ति., ०मर्दनम्- आ.। ०नस्यशयन- क., ०नस्यशवन- ति., ०नस्यशमन- इ.।

पित्तशमन के उपाय

तिक्तस्वादुकषायशीतपवनच्छायानिशावीजनं
ज्योत्स्नाभूगृहयन्त्रवारिजलजस्त्रीगात्रसंस्पर्शनम्।
सर्पि:क्षीरविरेकसेकरुधिरस्रावप्रदेहादिकं
पानाहारविहारभेषजमिदं पित्तं प्रशान्तिं नयेत्।।९७।।

तिक्त (कड़वे पदार्थ), स्वादु (मधुर पदार्थ), कषाय (कसैले रस वाले पदार्थ), शीतल गुण वाले पदार्थ, शीतल पवन, शीतल छाया, शीतल रात, शीतल वीजन (जलसिक्त पंखे की हवा), ज्योत्स्ना (चन्द्रिका/चाँदनी), भूगृह (शीतल तहखाना), यन्त्रवारि (यन्त्रनिर्गत जल, फव्वारे से निकलने वाला जल, इसी प्रकार कूलर से वायु के साथ निकलने वाला जल आदि) से पित्त शान्त होता है। जलज (क़मल/नीलकमल) तथा शीतल कान्ता के शरीर के संस्पर्शन आदि से भी पित्त का शमन होता है। इसी प्रकार घृत, क्षीर (दूध), विरेक (विरेचन), रुधिरस्राव (रक्तमोक्षण) एवं प्रदेह (चन्दन आदि के शीतल लेपन) से पित्त का शमन होता है। इस प्रकार यहाँ निर्दिष्ट किए गए खान-पान, विहार एवं औषध आदि से पित्त का शमन करना चाहिए।

रक्तमोक्षण- पित्तशमन के लिए रक्तमोक्षण (विकृत खून को निकालना) भी एक उपाय बताया गया है। इसके पीछे कारण यह है कि रक्त को पित्त का अधिष्ठान (आधार) माना गया है। कटु, उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल एवं विदाही पदार्थों के अधिक एवं निरन्तर सेवन से बढ़ा हुआ पित्त रक्त में मिल जाता है, तब वैद्य के परामर्शानुसार पित्त से दूषित रक्त का सीमित मात्रा में जलौका (जोंक) या शृङ्गयन्त्र (सिंगी) द्वारा स्राव कराया जाता है। इससे रक्ताश्रित पित्त के निकलने से रोगी को राहत मिलती है।

---

९७. वीजनै- ति., वीजनं- इ., संस्पर्शनैः, संस्पर्शनम्- ति., इ.। वारियन्त्र-, यन्त्रवारि- इ., रू., जलदं- इ., जलज- रू.।

कफशमन के उपाय

रूक्षक्षारकषायतिक्तकटुकव्यायामनिष्ठीवनं
स्त्रीसेवाध्वनियुद्धजागरजलक्रीडापदाघातनम्।
धूमात्युष्णशिरोविरेकवमनस्वेदोपवासादिकं
पानाहारविहारभेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं जयेत्।।९८।।

रूक्ष (रूखे), क्षार (यवक्षार, स्वर्जिकाक्षार आदि), कषाय (कसैले), तिक्त (कड़वे), कटुक (चरपरे) पदार्थों के सेवन से कफ का शमन करना चाहिए। व्यायाम, निष्ठीवन (थूक, कफनिर्गमन), स्त्रीसंसर्ग (मैथुन), अध्व (मार्ग चलना/पैदल यात्रा), नियुद्ध (कुश्ती करना), जागर (जागरण/अधिक न सोना), जलक्रीडा (तैरना), पदाघातन (पैरों द्वारा शरीर को दबवाना अथवा पैरों के बल उछलना), औषधीय धूमपान, अत्युष्ण (बहुत उष्ण/ गर्म गुण वाले आहारद्रव्यों) का सेवन, शिरोविरेचन (नस्य), वमन, स्वेद (पसीना लेना) एवं उपवास आदि क्रियाओं से भी कफ का शमन होता है। इस प्रकार पूर्वोक्त भोजन-पान, विहार एवं औषधों से प्रबल कफ को जीतना चाहिए।

त्रिदोष-शोधन के उपाय

कफप्रकोपे वमनं सनस्यं
विरेचनं पित्तभवे विकारे।
वातात्मके वस्तिमुदाहरन्ति
संसर्गजे तु व्यतिमिश्रमेतत्।।९९।।

---

९८. ०निष्ठीवन-, ०निष्ठीवनं- ति., इ., रू.। ०घातनैः-., ०घातनम्- ति., इ., रू.। ०धूमैर्नस्यशिरो-., ० धूमो नस्यशिरो- ति., ०धूमात्युष्णशिरो- इ., रू.। ०वासादिकं- ति., इ., रू., ०वासादिभिः-।विहारयुक्तिभिरमुमं., विहारभेषजंमिदं- ति., इ., रू.।

९९. संसर्गजेऽपि- इ., संसर्गजे तु- ति.। वातात्मके- ति., इ., वातामये-।

कफ का प्रकोप होने पर वमन व नस्य लेना चाहिए। पित्तजन्य विकार होने पर विरेचन लेना चाहिए तथा वातजन्य विकार में वस्ति लेनी चाहिए। यदि एक से अधिक दोषों के संसर्ग से विकार उत्पन्न हुए हों तो उनके निराकरण के लिए पूर्वोक्त वमन आदि उपायों को सम्मिलित रूप में अपनाना चाहिए।

दोषों के प्रकोप काल

हेमन्तवर्षाशिशिरेषु वायोः
पित्तस्य वर्षान्तनिदाघयोश्च।
कफस्य कोपः कुसुमागमे च
कुर्वीत यद्यद्विहितं यथैषाम्।।१००।।

हेमन्त, वर्षा एवं शिशिर में वायु का प्रकोप होता है। वर्षान्त (वर्षा के अनन्तर शरत्काल अर्थात्- आश्विन, कार्त्तिक) में पित्त का प्रकोप होता है तथा कुसुमागम (वसन्त ऋतु- चैत्र, वैशाख) में कफ का प्रकोप होता है। ऐसा जानकर उक्त कालों में इनके शमन हेतु पूर्वोक्त उपाय अपनाने चाहिए।

दोष-शमन के उपाय

वातोऽम्लतैललवणैर्मधुरान्नपानैः
पित्तं तथा मधुरतिक्तकषायशीतैः।
श्लेष्मापि तिक्तकटुरूक्षकषायतीक्ष्णै-
रामः प्रशान्तिमुपयात्यपतर्पणेन।।१०१।।

---

१००. यत्नं विहितं- ति., यद्यद्विहितं- इ.। तथैषाम्- आ., यथैषाम्- ति., इ.।

१०१. श्लेष्मा कटूष्णलघुतीक्ष्ण कषाय रूक्षैः- जे.१, श्लेष्मापि तिक्त कटुरूक्षकषायतीक्ष्णै- इ., श्लेष्मा कषायलघुरूक्षकटूष्णतीक्ष्णैःशान्तिं प्रयाति लघुभोजनतर्पणैश्च- इति जै.२ पुस्तके पाठः। ०त्यपकर्षणैश्च- जै.१, ०त्यपतर्पणैश्च- ति., इ.।

अम्ल (खट्टे भोज्य पदार्थ), तैल, लवण एवं मधुर अन्नपान से वात का शमन होता है, मधुर, तिक्त (कड़वे), कषाय (कसैले) एवं शीतल गुण वाले अन्नपान से पित्त का शमन होता है। तिक्त (कड़वे), कटु (चरपरे), रूक्ष (रूखे), कषाय (कसैले), तीक्ष्ण (मिर्च आदि तेज) भोज्य पदार्थों से कफ का शमन होता है। अपतर्पण (उपवास) एवं काली मिर्च, सोंठ आदि पाचन द्रव्यों के सेवन से आम (आंव) का शमन होता है।

दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा

इसके अनन्तर योगशत की कतिपय हस्त-लिखित प्रतियों में आगे दिया जा रहा पद्य सम्मिलित किया हुआ है। रूपनयनकृत 'वैद्यवल्लभा' टीकायुक्त 'योगशत' में भी यह पद्य ग्रन्थ के मूल भाग में स्वीकृत है। इसमें आयुर्वेद की एक विशिष्ट चिकित्सा का उल्लेख किया है, जिसे 'दैवव्यपाश्रय चिकित्सा' कहते हैं। इसमें मन की शुद्धि, आचरण की पवित्रता एवं आध्यात्मिक अनुष्ठान मुख्य होते हैं। यह बहुत ही प्रभावशाली एव तन-मन को शीघ्र ही स्वास्थ्य व शान्ति प्रदान करने वाली चिकित्सा है। निम्न पद्य में इसी का वर्णन है-

होमोपवास-नियमाः प्रायश्चित्तं जपव्रतम्।
देवद्विजार्चनं मन्त्र-बलि-स्वत्ययनानि च।
दैवव्यपाश्रयं ह्येतदौषधं परिकीर्तितम्।।

होम- हवन/अग्निहोत्र प्राचीनतम भारतीय चिकित्सा-पद्धति का एक बहुत सशक्त साधन है। घर में हवन करने से तुरन्त ही रोगजनक रोगाणु-कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। इससे तन, मन- दोनों का स्वास्थ्य मिलता है।

उपवास- यह भी 'दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा' का विशिष्ट अंग है। अधिकांश रोग अधिक खाने व अजीर्ण में खाने से होते हैं। उपवास इस प्रकार के रोगों को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय है। कहा भी है- **'जीर्णे भोजनमात्रेयः, लङ्घनं**

परमौषधम्'- अर्थात् सदा पूर्वभोजन के जीर्ण होने (पचने) पर ही भोजन करना चाहिए। यदि कभी प्रमादवश अजीर्णाशन, अध्यशन या अत्यशन हो जाए तो लंघन (उपवास) से उस दोष का शमन करना चाहिए, यह परम औषध है। आयुर्वेद में कहा गया है कि सभी रोगों का मुख्य कारण मलों का कुपित होना है। इस कारण का निवारण करने के लिए उपवास से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है। अतः उपवास को 'दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा' का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। ध्यान रहे उपवास क्षमता के अनुसार सीमित ही करना चाहिए, बहुत अधिक नहीं।

नियम- मन व इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखने के लिए अहिंसा आदि यमों तथा शौच (मन व शरीर की स्वच्छता) आदि नियमों का पालन इसके अन्तर्गत आता है। इन्हें अपनाने वाले व्यक्ति का मन निर्मल व शान्त रहता है तथा रोगों की चिकित्सा में सकारात्मक स्थिति बनती है।

प्रायश्चित्त- जाने-अनजाने में किसी पाप या अपराध के हो जाने पर उसे स्वीकार कर पश्चात्ताप करते हुए किसी तप का अनुष्ठान करना प्रायश्चित्त कहलाता है। इसका उद्देश्य पाप के संस्कार को नष्ट करना व उसकी पुनरावृत्ति न करने का निश्चय है। प्रायश्चित्त करने वाला व्यक्ति पाप, अपराध व रोगकारक अपथ्यों से बचा रहता है, अतः यह भी 'दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा' का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

धर्मशास्त्रों में पापों के प्रायश्चित्त के लिए चान्द्रायण आदि व्रतों के साथ प्राणायाम को भी वैकल्पिक प्रायश्चित्त के रूप में बताया है; क्योंकि इससे मन व तन निर्मल और स्वस्थ हो जाते हैं तथा पाप की भावना नष्ट हो जाती है। प्राणायाम को सबसे बड़ा तप माना है- **'प्राणायामाः परं तपः'**। इससे रजोगुण और तमोगुण का क्षय होता है, तथा सत्त्वगुणी प्रवृत्ति बढ़ती है। इसके परिणाम-स्वरूप मनुष्य का मन शान्त और सन्मार्गारूढ हो जाता है। इस प्रकार प्राणायाम से शारीरिक व मानसिक रोग दूर हो जाते हैं। इसके पीछे रहस्य यह है कि मन की वृत्ति प्राणवृत्ति पर अवलम्बित होती है। प्राणायाम के द्वारा प्राण के साधने से मन भी शान्त व निष्कल्मष हो जाता है। अत एव प्रतिदिन प्रातः-सायं स्वच्छ वायुमण्डल में गहरे

लम्बे श्वास लेने, प्राणायाम का अभ्यास करने से मन की चञ्चलता समाप्त हो जाती है और वह एकाग्र एवं शान्त हो जाता है। इससे शरीर एवं विशेष रूप से मस्तिष्क को पर्याप्त प्राणवायु मिलती है, जिससे निराशा व तनाव दूर होता है तथा मन में उत्साह व उल्लास प्रकट होता है। इस प्रकार प्रायश्चित्त का मुख्य साधन प्राणायाम दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का अति महत्त्वपूर्ण अंग है।

जप- गायत्री आदि मन्त्रों का जप करना, प्रणव (ओंकार) का जप करना इसके अन्तर्गत आता है। जप करने से व्यक्ति के मानसिक विकार शान्त हो जाते हैं तथा रोगी व्यक्ति को शीघ्र स्वास्थ्यलाभ हो जाता है। वैदिक परम्परा में सन्ध्या के साथ नित्य गायत्री-जप करने का विधान किया गया है। यह मन की शान्ति के साथ आरोग्य भी प्रदान करता है।

व्रत- किसी दुर्व्यसन को छोड़ने के लिए दृढ़ संकल्प करना, अपनी बुरी आदतों व बुराइयों को छोड़ने के लिए दृढ़ निश्चय करना व्रत कहलाता है। इससे व्यक्ति अशान्ति व अनारोग्य पैदा करने वाली स्थितियों से बचा रहता है तथा रोगी व्यक्ति शीघ्र स्वास्थ्यलाभ करता है।

देवार्चन- भगवान् की पूजा करने से शीघ्र आरोग्यलाभ होता है। इससे मन निर्मल व शान्त हो जाता है तथा व्यक्ति सन्मार्ग पर चलते हुए उचित आहार-विहार का सेवन करने लगता है। भगवद्-भजन से मानस विकारों के शान्त होने से व्यक्ति के शारीरिक विकार भी स्वतः ही शान्त हो जाते हैं। आयुर्वेद का प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि- **'मानसे ह्युपशान्ते हि शारीरमुपशाम्यति'** अर्थात् मानसिक विकारों के शान्त होने पर शारीरिक विकार अपने-आप शान्त होने लगते हैं। अतः चित्तशुद्धि करने वाले देवार्चन को 'दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा' में मुख्य स्थान प्राप्त है।

द्विजार्चन- द्विज अर्थात् विद्वान्, गुणी, सदाचारी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सज्जन व्यक्तियों का संग, सत्कार व पूजन करने से व्यक्ति उन्हीं जैसा सदाचारी बन जाता है। इस से संयम व पथ्याहारपूर्ण जीवनचर्या अपनाने के कारण रोगों से बचा रहता है।

मन्त्र- पवित्र वेदमन्त्रों का पाठ करने से मन सत्त्वगुणप्रधान बनता है तथा व्यक्ति संयमी होकर अनुचित आचरण व अनुचित आहार-विहार से बचा रहता है। इस प्रकार उसे मन्त्र-साधना से भी आरोग्यलाभ होता है।

बलि- बलि का अर्थ है भेंट। इसीलिए 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' में नाना जन्तुओं एवं पशु-पक्षियों के लिए भोजन के रूप में बलि (भेंट) दी जाती है। इससे सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभावना व हितैषिता का भाव बढ़ता है, मन निर्मल होता है तथा व्यक्ति सात्त्विकता व प्रसन्नता को प्राप्त करता है। इससे आरोग्यलाभ में विशेष सहायता मिलती है।

स्वस्त्ययन- इसे स्वस्तिवाचन भी कहते हैं। इसमें वेदमन्त्रों के द्वारा स्वस्ति अर्थात् कल्याण एवं शुभ की प्रार्थना की जाती है। इससे स्वास्थ्यलाभ में बड़ा ही सकारात्मक प्रभाव पड़ता है एवं रोगी का मनोबल बहुत बढ़ जाता है, जिससे शीघ्र रोगमुक्त होने में सहायता मिलती है। इस प्रकार स्वस्त्ययन भी आरोग्यलाभ का एक विशिष्ट उपाय है। अत एव यह भी 'दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा' के अन्तर्गत आता है।

ग्रन्थ का उपसंहार

बुद्ध्वैतदन्यदपि यद्यदनुक्तमत्र
युक्त्या स्वयं समधिगम्य यथानुरूपम्।
रोगेषु भेषजमनल्पमतिर्विदध्यात्
शास्त्रं हि किञ्चिदुपदेशबलं करोति।।१०२।।

इस ग्रन्थ में वर्णित सम्पूर्ण विषय को अच्छे प्रकार से समझकर तथा ग्रन्थ के संक्षिप्त होने से जो विषय यहाँ अनुक्त है, अर्थात् कहा नहीं गया है, उसे भी गुरुमुख से अथवा अन्य ग्रन्थों से जानकर उचित रूप में औषध-प्रयोग एवं चिकित्सा करनी चाहिए; क्योंकि शास्त्र तो दिग्दर्शन के रूप में संक्षिप्त

१०२. बुध्वैतदन्यदपि यद्यदनुक्तमत्र- इ., बुध्वैतदेवमखिलं यदनुक्तमत्र- ति.। ०देशबलं- आ.,०देशवलं-ति., ०देशलवं- इ.।

उपदेश द्वारा ही कुछ बल प्रदान करता है। शेष तो बुद्धिमान् वैद्य को अनुभवी गुरुजनों से जानना चाहिए तथा अपने अनुभव से चिकित्सा-कुशलता को बढ़ाना चाहिए।

लोक के आरोग्य की मंगलकामना

गुणाधिकं योगशतं निबध्य
प्राप्तं मया पुण्यमनुत्तमं यत्।
नानाप्रकारामयनीडभूतं
कृत्स्नं जगत्तेन भवत्वरोगम्।।१०३।।

गुणबहुल इस '**योगशत**' नामक रचना को निबद्ध (गुम्फित) कर मैंने (अमितप्रभ ने) जो पुण्य प्राप्त किया है, उसके प्रभाव से नाना प्रकार के रोगों का नीड (घर) बना हुआ यह सम्पूर्ण संसार निरोग हो जाए, ऐसी मेरी शुभकामना है।

ग्रन्थकार आचार्य 'अमितप्रभ' का यह जनकल्याणकारी मनोभाव है कि इस रचना का अनुशीलन कर वैद्यजन एवं अन्य सामान्य जन आरोग्य प्राप्त कर सुखी रहें। इस प्रकार यह रचना उन्होंने जन-कल्याण की भावना से लोक को आरोग्य प्रदान करने के उद्देश्य से बनाई है।

।। इति अमितप्रभ-विरचितं योगशतं सम्पूर्णम्।।

---

१०३. पुण्यमनुत्तरं- इ., पुण्यमनुत्तमं- आ.।

परिशिष्ट-१.

योगशत-हस्तलेखों में उपलब्ध अधिक पाठ

'योगशत' की कतिपय हस्तलिखित प्रतिलिपियों में कुछ अधिक श्लोक मिलते हैं। उनका यहां संकलन किया जा रहा है-

शरीरनेत्रव्रणरोहणानि विषाणि भूतानि च बालतन्त्रम्।
रसायनं पञ्चविधं च कर्म अष्टाङ्गमायुः कथयन्ति वैद्याः।।

पाठान्तर- अष्टाङ्गमायुः कथितं वैद्यम्- जै.१

ज्वराभिभूते षडहादनन्तरं विपक्वदोषे कृतलङ्घनादिभिः।
यद् भेषजं वैद्यवरः प्रयोजयेदसंशयं हन्त्यचिरेण रोगान्।।

यह पद्य जै.१ में ग्रन्थ के प्रथम श्लोक के रूप में उपलब्ध है।

निम्न श्लोक चक्रदत्त-रत्नप्रभा में अमितप्रभ के चिकित्सातिशय नामक ग्रन्थ से उद्धृत किया है। यह 'योगशत' की कतिपय प्रतिलिपियों में भी मिलता है-

एलालवङ्गगजकेसरकोलमज्जा
प्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पलीनाम्।
चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा
छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्ताजाञ्च।। (एलादिचूर्णम्)

एलेत्यादि ख्यातं **चिकित्सातिशयस्य।**

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, छर्दिचिकित्सा- २३, पृ.३०५)

निम्न दो श्लोक 'योगशत' की कतिपय प्रतिलिपियों में मिलते हैं-

सामुद्रसौवर्च्चलसैन्धवानि
क्षारो यवानामजमोदकञ्च।
सपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेरं
हिङ्गुर्विडञ्चेति समानि कुर्यात्।।

एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि
भुञ्जीत पूर्वं कवलं प्रशस्तम्।
वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्तं
वायुप्रकोपं ग्रहणीञ्च दुष्टाम्।।
अर्शांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं
भगन्दरञ्चेति निहन्ति सद्यः।।

निम्न श्लोक 'योगशत' की कतिपय प्रतिलिपियों में मिलता है,

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतिक्तामृतादार्व्यभयाकषायः।
सर्वाङ्गशोथोदरकासशूलश्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति।।

इसके अतिरिक्त एक अन्य श्लोक -

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम्।
सक्षौद्रं वा प्रलेपेन सर्वलिङ्गगदापहम्।। (चक्रदत्त, उपदंशचिकित्सा- ९)

इस चक्रदत्तगत श्लोक की रत्नप्रभा में निश्चलकर ने अमितप्रभ के नाम से उद्धृत किया है। इस श्लोक की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं-

रसाञ्जनमित्यादि ख्यातं **रविगुप्तस्य**। त्रयो योगाः। रसाञ्जनं पथ्यया सहोत्कृष्टम्, तथा **चामितप्रभः-**

'रसाञ्जनं साभयमेकमेव प्रलेपमात्रेण नयेत् प्रशान्तिम्।
विपूतिपूयव्रणशोथकण्डूशूलान्वितं सर्वमनङ्गरोगम्।। इति
(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, उपदंशचिकित्सा-९, पृ. ६२६)

ऐसा प्रतीत होता है कि यह श्लोक 'अमितप्रभ' के 'चिकित्सातिशय' नामक ग्रन्थ से लिया गया है। क्योंकि यह योगशत की हस्तलिखित प्रतिलिपियों में उपलब्ध नहीं हुआ है।

आगे लिखे श्लोक को भी निश्चलकर ने 'योगशत' का बताया है,

परन्तु रूपनयन-टीका एवं अन्य प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में उपलब्ध नहीं है-

शृङ्गीमहौषधकणाघनपुष्कराणां
चूर्णं शटीमरिचशर्करया समेतम्।
क्वाथेन पीतममृतावृषपञ्चमूल्याः
श्वासं त्र्यहेण शमयेदतिदोषमुग्रम्।।

शृङ्गी (कर्कटशृंङ्गी/काकड़ासिंगी), महौषध (शुण्ठी), कणा (पिप्पली), घन (मुस्ता), पुष्कर (पुष्करमूल)- इनका चूर्ण शटी (कपूरकचरी), कालीमिर्च एवं शर्करा सहित लें। इसे अमृता (गिलोय), वृष (अडूसा) एवं बृहत्पञ्चमूल के क्वाथ के साथ सेवन करें। यह योग अति प्रबल श्वास रोग को तीन दिन में ही शान्त कर देता है।

इस पर निश्चलकर की व्याख्या इस प्रकार से है-

शृङ्गीत्यादि **योगशतस्य।** शृंग्यादीनां शर्करान्तानां चूर्णं प्रक्षेप्यम्। अत्र पञ्चमूलीं महतीमाहुरिति।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, हिक्काश्वासचिकित्सा-१५, पृ. २८९)

निम्न श्लोक भी 'योगशत' की कतिपय प्रतिलिपियों में उपलब्ध है। यह मैसूर-संस्करण में भी उपलब्ध है-

शुक्लैरण्डजटाविडङ्गमधुको जीवन्तिकोग्रात्वचो
रास्ना-नागरसैन्धवैः सतगरैः तुल्यांशकैः कल्कितैः।
संयुक्तैः पयसा समार्कवरसं तैलं हितं साधितं
नासारोचनमस्तकोर्ध्वगतिषु प्रोक्तं हि षड्बिन्दुकम्।।

श्वेत एरण्ड की जटा (जड़), विडंग, मधुक (मुलेठी), जीवन्तिका, उग्रा (वचा), त्वक् (दालचीनी), रास्ना, नागर (शुण्ठी), सैन्धव लवण, शतपुष्पा (सोया)- इनका कल्क बनाकर दूध एवं भृंगराज के रस के साथ

तैल सिद्ध करें। यह तैल नासिका, नेत्र, मस्तक एवं ऊर्ध्वजत्रु-रोगों को नष्ट करता है। यह 'षड्बिन्दु तैल' के रूप में प्रसिद्ध है।

निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थ एवं नस्यं निषिक्तं विधिना यथावत्।
मासेन तत्क्षीरभुजो नरस्य जराग्रदूतं पलितं निहन्ति।।

नीम के तैल को एक मास पर्यन्त नस्य के रूप में लें तथा पथ्याहार में केवल दूध का सेवन करें। इससे यह तैल वृद्धावस्था के अग्रदूत पलित (केशों के श्वेतपन) को नष्ट कर देता है। यह पद्य अनन्तकुमार-प्रणीत 'योगरत्न-समुच्चय' (भाग-३) के रसायन-प्रकरण में भी पृष्ठ ३३४ पर अमितप्रभ के नाम से उद्धृत है।

निम्न श्लोक कतिपय प्रतिलिपियों में उपलब्ध होते हैं-

वासामृता-भृङ्गक-कण्टकारी-निर्गुण्डिका-चक्र्यभयापमार्गाः।
क्वाथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं हरन्ति शीतज्वरदाहपूर्वकम्।।

अजमोदा मोचरसं शृङ्गवेरं सधातकीकुसुमम्।
गोथिमतसम्प्रयुक्तं गङ्गामपि वेगवाहिनीं रुन्ध्यात्।।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठी-तिक्तामृतादार्व्यभयाकषायः।
सर्वाङ्गशोफोदरपाण्डुरोग-श्वासान्वितं दुष्टगदं निहन्ति।।

खदिरः कुटजः पिचुमन्दवचा
त्रिकटु-त्रिफला-त्रिवृता-सहितम्।
पशुमूत्रयुतं पिब सप्तदिनं
क्रिमिकोटिशतान्यपि नाशयति।।

मूर्वाम्लिका-दहन-सूरण-वह्निकानां
तक्रेण चूर्णमुषसि प्रतिलोड्य पीतम्।
अष्ठील-गुल्म-गुदकील-भगन्दरघ्नम्
पञ्चाग्नि नाम जठराग्निकरं नराणाम्।।

नागर-पिप्पलि-चित्र-विडङ्गं
पूतिकरञ्ज-हरीतकि सम्यक्।
शर्करया गुटिकां कुरु भक्ष
अग्निमुखं वडवानलतीव्रम्।।

त्रिकटुमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे
समचरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः।
प्रथमकवलभोजी सर्पिषा चूर्णमेत-
ज्जनयति जठराग्निं वातगुल्मं निहन्ति।।

अर्कं सकुष्ठं करवीरमूलं भृङ्गं सतालं लवणं हरिद्रे।
स्नुक्काण्डकं चैव समानि कृत्वा तैलं पचेन्मूत्रचतुर्गुणेन।।

अनेन कण्डूकटिभङ्गचर्म-विचर्चिकादद्रुकमण्डलानि।
अभ्यङ्गमात्रेण शमं व्रजन्ति शाखागतो वायुरथानिलास्त्रम्।।

सिन्धूत्थपथ्यमगधोद्भववह्निचूर्ण-
मुष्णाम्बुना पिबति यः किल नष्टवह्निः।
तस्यामिषेण सघृतेन पिबेत् कथन्नो
भस्मीभवत्यशितमात्रमपि क्षणेन।।

हिङ्गुर्विडङ्गं मधुकं च कुष्ठं सनागरं गोघृतपक्वमेतत्।
षड्बिन्दुनाम्ना घृतमेतदुक्तं शिरोगतं रोगशतं निहन्ति।।
शिरीषयष्ट्यागरुचन्दनैला-मांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः।
लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो विसर्पकुष्ठव्रणशोफहारी।।

।। इति अधिकपाठ-संकलनम्।।

परिशिष्ट-२.

विभिन्न ग्रन्थों में योगशत (अमितप्रभीय) के उद्धरण

मुख्यतः चक्रदत्तदत्त-रत्नप्रभाकार निश्चलकर ने प्रस्तुत रचना से 'योगशत' एवं 'अमितप्रभ' के नाम से उद्धरण दिए हैं, उन्हें यहां प्रदर्शित किया जा रहा है। कुछ अन्य ग्रन्थकारों ने भी 'योगशत' नाम लेकर अथवा बिना नाम लिए इसके उद्धरण प्रस्तुत किए हैं, उनकी सूचना भी इस परिशिष्ट में दी जा रही है। पहले निश्चलकर द्वारा प्रदर्शित उद्धरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं। यहां उद्धरण के सामने जो श्लोक संख्या है, वह 'योगशत' के प्रस्तुत संस्करण के अनुसार दी गई है।

१. क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः- ४;
उद्धृत- 'तस्यैव (योगशतस्यैव)'-

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा- १४२, पृ. ६२;

२. आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ता- ५;
उद्धृत- आरग्वधेत्यादि योगशतस्य-

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा- १४१, पृ. ६२;

३. द्राक्षाभयापर्प्पटकाब्दतिक्ता- ६;
उद्धृत- 'द्राक्षेत्याद्यमितप्रभस्य'-

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा- ९०, पृ. ५०;

४. निदिग्धिकानागरकामृतानां- ७;
उद्धृत- निदिग्धिकेत्यादि ख्यातं योगशतस्य-

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा- १४२, पृ. ६२;

५. दुरालभापर्प्पटकप्रियङ्गु- ८;
उद्धृत- दुरालभेत्याद्यमितप्रभस्य,

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा-८४, पृ. ४८;

६. फलत्रिकं दारुनिशां विशालां- ९;

उद्धृत- **फलेत्यादि योगशतस्य,**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, प्रमेहचिकित्सा- १७, पृ. ५१४;

७. सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः- १०;

उद्धृत- **सवत्सक इत्यादि योगशतस्य,**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, अतीसारचिकित्सा- ६४, पृ. १३३-१३४;

८. शुण्ठीं समुस्तातिविषां गुडूचीं- ११;

उद्धृत- **शुण्ठीमित्यादि चरकस्य,**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ग्रहणीचिकित्सा- ७, पृ. १४४;

यह पद्य मूलतः चरकसंहिता का है। वहीं से योगशतकार ने लिया है, अतः चक्रदत्त-रत्नप्रभाकार ने इसे चरक का बताया है। यह 'योगशत' की प्रायः सभी प्रतिलिपियों में मिलता है।

९. पुनर्नवां दार्वभयागुडूचीं- १२;

उद्धृत- **पुनर्नवेत्यादि योगशतस्य,**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, उदरचिकित्सा- ५१, पृ. ५४२-५४६;

१०. मुस्ताखुपर्णीफलदारुशिग्रु- १३;

उद्धृत- **मुस्ताखुपर्णीत्यादि ख्यातममितप्रभस्य।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, कृमिरोगचिकित्सा- ४, पृ. २१८;

११. एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदं- १४;

उद्धृत- **एलेत्यादि योगशतस्य।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, अश्मरीचिकित्सा- ३२, पृ. ५०५;

१२. एलेश्मभेदक-शिलाजतु-पिप्पलीनाम्- १५;

उद्धृत- **एलेत्यादि ख्यातं योगशतस्य।**

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा- २४, पृ.४९४)

१३. हरीतकी-गोक्षुर-राजवृक्ष- १६;

उद्धृत- **हरीतकीत्यादि योगशतस्य।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा- ७, पृ. ४९१;

१४. वासा-गुडूची-चतुरङ्गुलाना- १७;
उद्धृत- वासेत्यादि ख्यातं योगशतस्य।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, वातरक्तचिकित्सा- ६, पृ. ४१०;

१५. एरण्ड-बिल्व-बृहतीद्वय-मातुलुङ्ग- १८;
उद्धृत- एरण्डेत्यादि योगशतस्य।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, शूलचिकित्सा- ५४, पृ. ४४५;

१६.चूर्णं समं रुचक-हिङ्गु-महौषधाना- १९;
उद्धृत- चूर्णमित्यादि योगशतस्य।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, शूलचिकित्सा- ५०, पृ. ४४५;

१७. हिंगूग्रगन्धा-विड-शुण्ठ्यजाजी- २१;
उद्धृत- हिंग्वित्यादि चरकस्य।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, गुल्मचिकित्सा- ४७, पृ. ४७७;

१८. पूतीकपत्र-गजचिर्भिट-चव्य-वह्नि- २२;
उद्धृत- पूतीकेत्यादि योगशतस्य।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, गुल्मचिकित्सा- ४०, पृ. ४७५;

१९. शृङ्गीकटुत्रय-फलत्रय-कण्टकारी- २३;
उद्धृत- शृङ्गीत्यादि योगशतस्य।

(चक्रदत्त-रत्नप्रभा, हिक्काश्वासचिकित्सा- ९, पृ. २८९)

२०. नादेयी-कुटजार्क-शिग्रु-बृहती-स्नुक्-बिल्व भल्लातकैः- २४;
उद्धृत- नादेयीत्यादि योगशतस्य।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, गुल्मचिकित्सा- ४६, पृ. ४७६-४७७;

२१. चव्याम्लवेतस-कटुत्रिक-तिन्तिडीक- २५;
उद्धृत- चवीत्यादि ख्यातं योगशतस्य।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, स्वरभेदचिकित्सा- ६, पृ. २९५;

२२. शुण्ठी-कणा-मरिच-नागदल-त्वगेलं- २७;
उद्धृत- शुण्ठीत्यादि योगशतस्यैव।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, अर्शश्चिकित्सा- ६४, पृ. १७१-१७२;

२३. सिन्धूत्थहिङ्गुत्रिफलायवानी-२८;

उद्धृत- **सिन्धूत्थेत्यादि ख्यातं योगशतस्य।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, अग्निमान्द्यचिकित्सा-१२, पृ.२०२

२४. गुडेन शुण्ठीमथवोपकुल्यां- २९;

उद्धृत- **गुडेनेत्यादि ख्यातं तस्यैव।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, अग्निमान्द्यचिकित्सा- १५, पृ. २०३;

२५. अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः- ३०;

उद्धृत- **अय इत्यादि ख्यातममितप्रभस्य।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, पाण्डुरोगचिकित्सा- ९, पृ. २२४;

अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः- ३०;

चक्रदत्त-रत्नप्रभा, मुखरोगचिकित्सा के ७३वें श्लोक- **'गृहधूमो यवक्षारः'** पर- **यदुक्तं योगशते- अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः सर्पिः (सर्वैः) समं माक्षिकचूर्णम्** इत्यादि- (चक्रदत्त-रत्नप्रभा, पृ. ७४५)

२६. हरीतकी-नागरमुस्तचूर्ण- ३१;

उद्धृत- **हरीतकीत्यादि ख्यातममितप्रभस्य।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, कासचिकित्सा- २९, पृ. २७६;

२७. मनश्शिलामागधिकोषणानां- ३२;

उद्धृत- लाजेत्यादि। श्लोकार्धैस्त्रयो योगाः। तत्राद्यो योगः मनःशिलाबीजपूराभ्यामपि, **यदुक्तं योगशते-**

मनःशिलामागधिकोषणानां चूर्णं कपित्थाम्लरसेन युक्तम्।
लाजैः समांशैर्मधुनाऽवलीढं छर्दिं प्रसक्तामपि हन्ति शीघ्रम्।। इति।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, छर्दिचिकित्सा- २७, पृ. ३०५;

२८. वटप्ररोहं मधु कुष्ठमुत्पलं- ३३;

उद्धृत- चक्रदत्त के **'वटशुङ्गमयक्षौद्र०'** (चक्रदत्त, तृष्णाचिकित्सा-२४) इस श्लोक की व्याख्या करते हुए रत्नप्रभाकार निश्चलकर ने 'योगशत' के

प्रस्तुत श्लोक को उद्धृत किया है-

वटशुङ्गोऽत्र वटप्ररोहः, यदुक्तममितप्रभे-

वटप्ररोहं मधु कुष्ठमुत्पलं सलाजचूर्णं गुटिकाश्च कल्पयेत्।

सुसंहता सा वदनेन धारिता तृष्णां प्रवृद्धामपि हन्ति सत्वरम्।। इति।

२९. धात्रीरसः सर्जरसः सुपाक्यः- ३५;

उद्धृत- **धात्रीत्यादि अमितप्रभस्य।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, कुष्ठचिकित्सा- २९, पृ. ६४४;

३०. दूर्वाभया-सैन्धव-चक्रमर्द- ३६;

उद्धृत- **दूर्वेत्यादि ख्यातं योगशतस्य।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, कुष्ठचिकित्सा- २०, पृ. ६४२;

३१. गण्डीरिका-चित्रक-मार्कवार्क- ३७;

उद्धृत- **गण्डीरिकेत्यादि योगशतस्य।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, कुष्ठचिकित्सा- १५९, पृ.६६७-६६८;

३२. सुवर्चिका-नागर-कुष्ठ-मूर्वा- ३९;

उद्धृत- **सुवर्चिकेत्यादि योगशत।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, ज्वरचिकित्सा-२७७, पृ. १०५;

३३. वृषखदिरपटोलनिम्बपत्र- ४१;

उद्धृत- **वृषेत्यादि। वृषो वासा।** यह श्लोक यद्यपि चक्रदत्त-रत्नप्रभाकार ने योगशतस्य अथवा अमितप्रभस्य कहकर उद्धृत नहीं किया है तथापि यह अमीतप्रभीय योगशत की प्रतिलिपियों में उपलब्ध है।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा-विसर्पविस्फोटस्नायुक-चिकित्सा-३४, पृ.६८८;

३४. विपाच्य मूत्राम्लमधूनि दन्ती- ४४;

उद्धृत- यह श्लोक चक्रदत्त के व्याख्याकार निश्चलकर ने 'अगारधूम सिन्धूत्थ०' (चक्रदत्त, उदावर्तानाहचिकित्सा- १४, पृ. २६४) की व्याख्या करते हुए इस प्रकार उद्धृत किया है- आगारेत्यादि ख्यातम्। अत्रान्तरे वर्त्तिरियं बोध्या-

विपाच्य मूत्राम्बुमधूनि दन्ती पिण्डीतकृष्णाबिडसिन्धुकुष्ठैः।
वर्त्तिं कराङ्गुष्ठनिभां घृताक्तां गुदे रुजानाहहरीं विदध्यात्।। इति।

(अमितप्रभस्येयं वर्त्तिः)

३५. यवाग्रजं तेजवती च पाठा- ५४;

उद्धृत- **यवाग्रजमित्यादि योगशतस्य।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा। मुखरोगचिकित्सा- ७७, पृ. ७४६;

३६. कुष्ठं दार्वी लोध्रमब्दं समङ्गा- ५६;

उद्धृत- **कुष्ठमित्यादि**। चक्रदत्त-रत्नप्रभाकार ने इसे 'योगशतस्य' अथवा 'अमितप्रभस्य' कहकर उद्धृत नहीं किया है तथापि यह अमितप्रभीय योगशत की प्रतिलिपियों में उपलब्ध होने से उसी का है।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, मुखरोगचिकित्सा- ११, पृ. ७२८;

३७. जातीनिम्बपटोलपत्रकटुका-दार्वीनिशासारिवा-६३;

उद्धृत- **जातीत्यादि अमितप्रभस्य।**

इस श्लोक की व्याख्या में रत्नप्रभाकार निश्चलकर ने- योगशतस्य टीका वल्लभा कहते हुए वल्लभाकार का उद्धरण प्रस्तुत किया है। इससे भी स्पष्ट है कि वे प्रस्तुत रचना की पद्यों को 'अमितप्रभस्य' एवं 'योगशतस्य' इन दोनों रूपों में सूचित करते हैं।

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, व्रणशोथचिकित्सा- ७५, पृ. ६०८;

३८. कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतकं- ७०;

उद्धृत- **कार्पासास्थीत्यादि ख्यातममितप्रभस्य।**

-चक्रदत्त-रत्नप्रभा, उन्मादचिकित्सा- ५०, पृ.३३३-३३४

३९. हरीतकीभिः क्वथितः कषायः -८१;

प्रस्तुत श्लोक चक्रदत्त के 'एरण्डतैलं त्रिफलाक्वाथेन०' (चक्रदत्त, विरेकाधिकार-१६, पृ.८३२) इस पद्य की व्याख्या करते हुए रत्नप्रभाकार निश्चलकर ने इस प्रकार उद्धृत किया है-

अत्रान्तरे बोध्यमिदम्-

हरीतकीभिः क्वथितः कषायो दन्त्यग्निकृष्णाबिडचूर्णयुक्तः।
विरेचनं वा रुबुतैलमिश्रं निरत्ययं योज्यमथामयघ्नम्।।

इत्यमितप्रभस्य।

इसके अतिरिक्त निम्नग्रन्थों में भी 'योगशत' के पद्य उपलब्ध होते हैं-

१. योगरत्नसमुच्चय - (चन्द्रट-विरचित)
२. गदनिग्रह - (सोढल-विरचित)
३. बालतन्त्र - (कल्याण-विरचित)
४. योगचिन्तामणि - (हर्षकीर्ति-विरचित)
५. निदानदीपिका - (करदीकर-विरचित)
६. वैद्यकचिन्तामणि - (महिमसमुद्र-विरचित)
७. अमरकोशटीका - (मल्लिनाथ-विरचित)
८. मेघविनोद - (मेघमुनि-विरचित)
९. रामविनोद - (रामचन्द्र-विरचित)
१०. योगतरङ्गिणी - (त्रिमल्ल-विरचित)
११. बृहद्योगतरङ्गिणी - (त्रिमल्ल-विरचित)
१२. योगसमुच्चय - (निधि-विरचित)
१३. योगरत्नसमुच्चय - (अनन्तकुमार-विरचित)
१४. योगरत्नाकर - (अज्ञातकर्तृक)

इनमें से आयुर्वेद के अज्ञातकर्तृक सुविख्यात ग्रन्थ 'योगरत्नाकर' में 'योगशत' से उद्धृत कतिपय पद्यों की सूचना यहां प्रस्तुत है-

१. हेमन्तवर्षाशिशिरेषु वायो: (योगशत-१००)

२. सन्धारणाध्यशनजागरणोच्चभाषा० (योगशत-८६)

३. कट्वम्लमद्यलवणोष्णविदाहितीक्ष्ण० (योगशत-८७)

५. स्वप्नाद्दिवा मधुरशीतलमत्स्यमांस० (योगशत-८८)

६. पारुष्यसंकोचनतोदशूलश्यावत्व० (योगशत-९०)

७. परिश्रमस्वेदविदाहरागवैगन्ध्यसंक्लेद० (योगशत-९१)

८. श्वेतत्वशीतत्वगुरुत्वकण्डूस्नेहोपदेह० (योगशत-९२)

९. स्निग्धोष्णस्थिरवृष्यबल्यलवणस्वाद्वम्ल० (योगशत-९६)

१०. तिक्तस्वादुकषायशीतपवनच्छाया० (योगशत-९७)

११. रूक्षक्षारकषायतिक्तकटुकव्यायाम० (योगशत-९८)

१२. कफप्रकोपे वमनं सनस्यं विरेचनं० (योगशत-९९)

१३. आलस्यतन्द्राहृदयाविशुद्धिदोषप्रवृत्त्या० (योगशत-९४)

१४. आमं जयेल्लङ्घनकोष्णपेयालघ्वन्न० (योगशत-९५)

(योगरत्नाकर, पृष्ठ- ८०)

१५. मुस्ताखुकर्णीफलदारुशिग्रुक्वाथ: सकृष्णा० (योगशत-१३)

(योगरत्नाकर, पृष्ठ- १५४)

१६. तैलं तिलानां पललं गुडं च क्षीरं तथार्कं सम० (योगशत-६५)

१७. आगारधूमो महिषाक्षयुक्त: सवाजीगन्धानत० (योगशत-६७)

१८. मयूरपिच्छेन च तण्डुलीयकं काकाण्डयुक्तं० (योगशत-६६)

(योगरत्नाकर पृष्ठ- ४७९)

('योगरत्नाकर' निर्णय सागर, मुम्बई, संस्करण- १९०७ ई.)

इस प्रकार बहुत-से ग्रन्थों द्वारा उद्धृत किए जाने वाले 'योगशत' की लोकप्रियता एवं वैद्यसमाज में श्रद्धेयता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

....

परिशिष्ट- ३.

योगशत की हस्तलिखित प्रतिलिपियों का परिचय

प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान जोधपुर (राजस्थान) से प्राप्त

दस हस्तलिखित प्रतिलिपियां

१. **योगशतटीका**- क्र.-१५६२, (रूपनयन), वैद्यावल्लभा टीका, पत्र- ८२, पूर्ण, देवनागरी लिपि; यह अति महत्त्वपूर्ण प्राचीन हस्तलेख है।

२. **योगशतक**- क्रमांक- ३८२८, देवनागरी लिपि, पत्र- ११;

३. **योगशतक**- क्रमांक- ३८२९, देवनागरी लिपि, पत्र- १६;

४. **योगशतक**- क्रमांक-३८५५, देव., पत्र-९, लिपिकाल- १६९५ वि.;

५. **योगशतक**- क्रमांक- ६६०३, देवनागरी लिपि, पत्र- ९;

६. **योगशतक**- क्रमांक- १०४१५, देवनागरी लिपि, पत्र- १७;

७. **योगशतक**- क्रमांक- ४७७९, देव., पत्र- १६, लिपिकाल- १७१२ वि.;

८. **योगशतक**- क्रमांक- २९२, देवनागरी लिपि, पत्र- २१;

९. **योगशतक**- क्रमांक- ५८७५, (सहबालावबोध) राजस्थानी व्याख्या, देवनागरी लिपि, पत्र- २७ पूर्ण;

१०. **योगशतक**- क्रमांक- ८३५६ देवनागरी लिपि, पत्र- १०;

प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान उदयपुर (राजस्थान) से प्राप्त

आठ हस्तलिखित प्रतिलिपियां

१. **योगशतक**- क्रमांक- ५०२, देवनागरी लिपि, अपूर्ण, पत्र- ५;

२. **योगशतक**- क्र.- ५०३, (रूपनयनटीका वैद्यवल्लभा), अपूर्ण, पत्र-२७;

३. **योगशतक**- क्रमांक- ५०५, (रूपनयनटीका वैद्यवल्लभा), अपूर्ण,

४. **योगशतम्-** क्रमांक- १४५९, देवनागरी लिपि, पत्र- ७-१५;

५. **योगशत-** क्र.- १५९३, देवनागरी लिपि, पत्र- १५, अन्तिम भाग अप्राप्त;

६. **योगशत सटीक-** क्र.-३८९३, (भाषाटीका), देवनागरी, पत्र- ५०, पूर्ण;

७. **योगशत-** क्र.-३८९९, (भाषाटीका), देवनागरी, पत्र-३५, १७७० वि.;

८. **योगशत-** क्रमांक- ३९०५, (भाषाटीका सहित), पत्र- १०;

प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान अलवर (राजस्थान) से प्राप्त दो हस्तलिखित प्रतिलिपियां

१. **योगशतम्-** (मूलमात्र), क्रमांक- ५२४२, देवनागरी लिपि, पूर्ण, पत्र- ८;

२. **योगशतम्-** (मूलमात्र), क्रमांक- ५२५०, देवनागरी लिपि, अपूर्ण, पत्र- ३;

जिनभद्रसूरि ग्रन्थभण्डार, जैसलमेर दुर्ग (राजस्थान) से प्राप्त दो हस्तलिखित प्रतिलिपियां

१. **योगशतम् (सटीक)-** ग्रन्थांक- २२२८, पत्र- २१, देवनागरी, पूर्ण; लिपिकाल- सं.- १५४५ वर्षे कार्तिक बदि अष्टम्यां सोमवारे लिखितम्।

२. **योगशतक (सह टब्बार्थ)-** ग्रन्थांक- ११९६.२, पत्र- २२, देवनागरी

भो. जे. अध्ययन-संशोधन भवन, आश्रम मार्ग, अहमदाबाद (गुजरात) से प्राप्त प्रतिलिपियां

१. **योगशतग्रन्थसारोद्धार-** (देवनागरी), ग्रन्थांक- ५६०३, पृ. १-१४

२. **योगशत-** ग्रन्थांक-१९६८, पत्र १-१२, लिपिकाल- सं-१७७३, वि.

३. **योगशत-** (देवनागरी), ग्रन्थांक- २१३०, पृ. १-१०, लिपिकाल- १६०७

४. **योगशत-** (देवनागरी), ग्रन्थांक- ३३६९, लिपिवर्ष-संवत्- १७०८

५. **योगशत-** (देव.), ग्रन्थांक ५३३५, पृ. १-३०, लिपिकाल- १७५६ वि.

६. **योगशतबन्ध-** (देवनागरी), लिपिवर्ष-१८४१

७. **योगशतबन्ध-** (देवनागरी), ग्रन्थांक- ४२२१, पत्र- १३,

८. **बृहद्योगशत-** (वैद्यवल्लभा, पूर्णसेनसूरि, देवनागरी लिपि), ग्रन्थांक-१८९५, लिपिवर्ष- सं.१६७५ वि.

लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर अहमदाबाद से प्राप्त दो प्रतिलिपियां

१. **योगशत सटीक** (वैकुण्ठ वैद्य टीका, देवनागरी), क्रमांक-१९२४, पत्र- ९.

२. **योगशत** (बालावबोध सहित), (देवनागरी), क्रमांक-११९३, पत्र- १२

श्रीकैलाससागरसूरि ज्ञानमन्दिर, श्रीमहावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा (गांधीनगर), गुजरात से प्राप्त पाँच प्रतिलिपियां

१. **योगशत-** क्रमांक- १५१०१, पूर्णसेनटीका, देवनागरी, पूर्ण, पत्र- १६.

२. **योगशतक-** क्र.- २७४८२, भाषाटीका, देव., लिपिकाल- १७९५ वि.

३. **योगशत-** क्रमांक- २४११४, सहअवचूरि, देवनागरी;

४. **योगशतक-** क्र.- २३८३०, भाषाटीका, देव., लिपिकाल- १७६१ वि.

५. **योगशतक-** क्रमांक- ६३४५४, पूर्णसेन टीका, देवनागरी लिपि;

प्राच्यविद्या मन्दिर सयाजीराव गायकवाड विश्वविद्यालय, बड़ौदा (गुजरात) से प्राप्त पांच प्रतिलिपियां

१. **योगशत-** (वररुचि) क्रमांक- १५६७, देवनागरी लिपि;

२. **योगशत-** (वररुचि), क्रमांक- ७१६२, देवनागरी लिपि;

३. **योगशत-** (वररुचि), क्रमांक- ८०९७, देवनागरी लिपि;

४. **योगशत-** (वररुचि), क्रमांक- ९०५९, टीका समन्तभद्र, देवनागरी लिपि;

५. **योगशतक-** सटीक, क्र.- ३५६२, देवनागरी, लिपिकाल- १९४३ वि.

गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय जामनगर प्राप्त प्रतियां-५ क्रमांक २९० इत्यादि

आनन्द आश्रम पुणे से प्राप्त तीन हस्तलिखित प्रतिलिपियां

१. **योगशतम्-** (अमितप्रभकृतम्), मूलमात्र, देवनागरी;

२. **योगशतक-** मूलमात्र, देवनागरी लिपि;

३. **योगशतम्-** नन्दलालकृत अन्वयचन्द्रिका सहित, देव.;

डेक्कन कालेज (पुणे) से प्राप्त एक हस्तलिखित प्रतिलिपि

१. **योगशतम्-** क्रमाक- ११०९१, देवनागरी लिपि;

फ्रेंच इन्स्टीटयूट पाण्डिचेरी से प्राप्त दो प्रतिलिपियां

१. **योगशतम्-** क्रमांक- टी. ५७६, पूर्णसेन टीका सहित, देवनागरी लिपि;

२. **योगशतम्-** क्रमांक- टी. ५७७, मूलमात्र, देवनागरी लिपि;

प्राच्यविद्या संशोधनालय (ओ.आर.आई.), **कार्यवट्टम्, तिरुवनन्तपुरम्, केरल विश्वविद्यालय से प्राप्त दो प्रतिलिपियां**

१. **योगशतम्-** क्रमांक-९७४३, अमितप्रभ- (देवनागरी) पत्र- १३, पूर्ण

२. **योगशतम्-** क्र.- ९७४४, अमितप्रभ- (देव.), भाषाटीका, पत्र-१६, अपूर्ण

मैन्युस्क्रिप्ट्स रिसोर्स सेण्टर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय (हरियाणा) से प्राप्त एक हस्तलिखित प्रतिलिपि

१. **योगशतकम्-** भाषाटीका सहित, देवनागरी लिपि, पत्र- १५

रघुनाथ मन्दिर हस्तलेखागार जम्मू से प्राप्त एक हस्तलिखित प्रतिलिपि

१. **योगशतकम्-** ग्रन्थांक- ३१०६, (मूल, देव.), लिपिकाल सं- १९१४ वि.

श्री यादवराव शर्मा, ग्राम- कन्दकृत्ति गोदावरी तट, निजामाबाद (आन्ध्रप्रदेश) से प्राप्त एक हस्तलिखित प्रतिलिपि

१. **योगशतबन्ध-** पूर्णसेन टीका सहित, देवनागरी लिपि, पृ. १-४२

योगशतम्- भो. १. प्रतिलिपि, भो.जे. अध्ययन-संशोधन भवन, अहमदाबाद - ग्रन्थांक ५६०३ (आद्यन्त भाग)

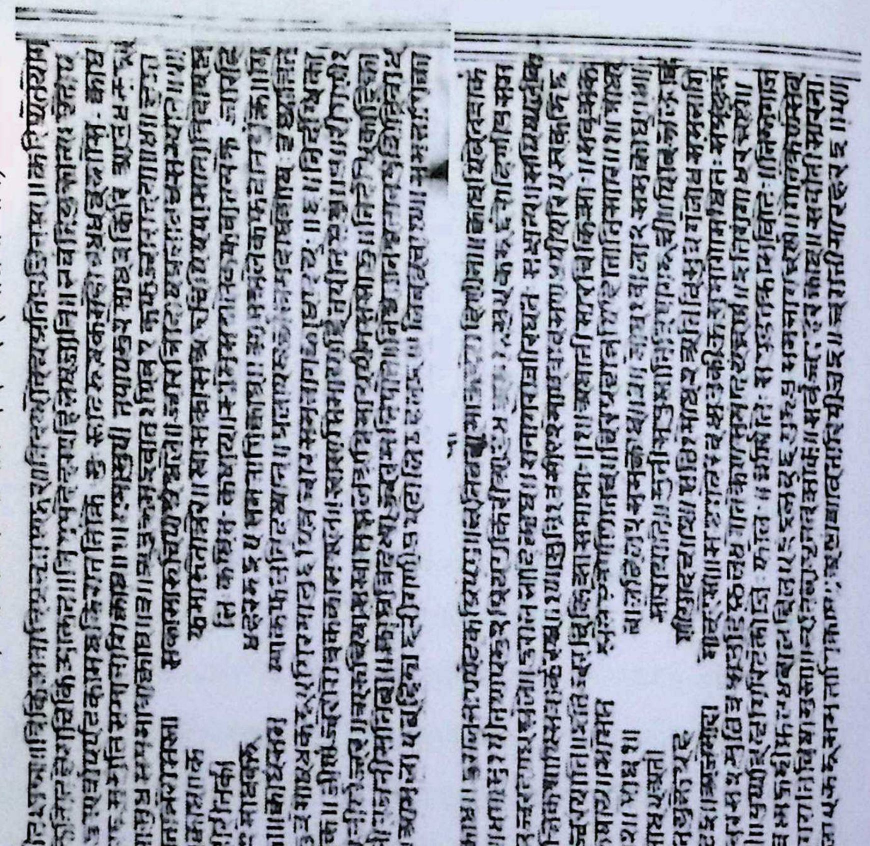

योगशतम् अ. प्रतिलिपि, प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान अलवर - हस्तलेख क्र. ५२४२. (आद्यन्त भाग)

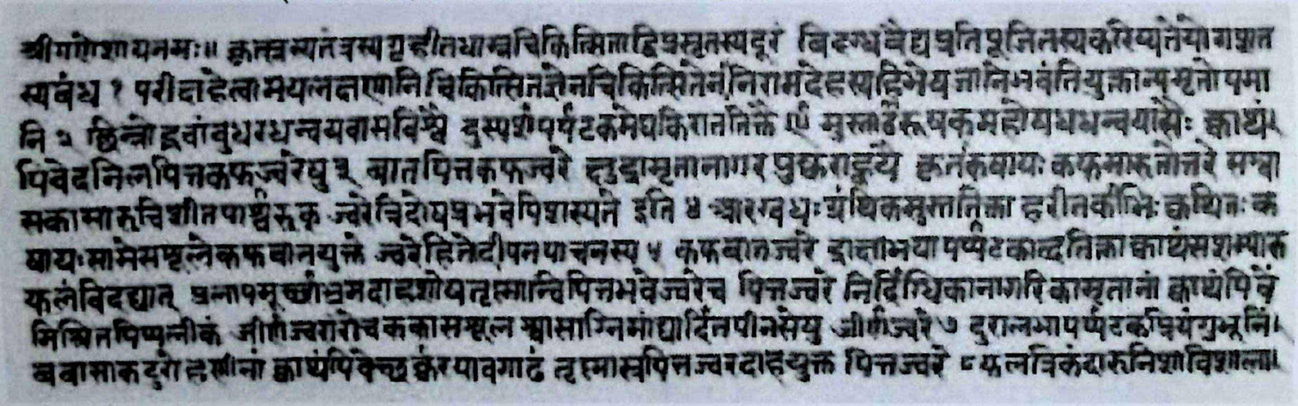

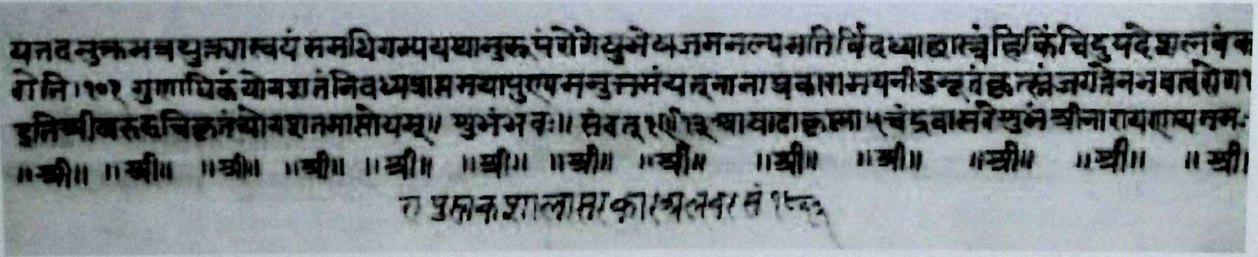

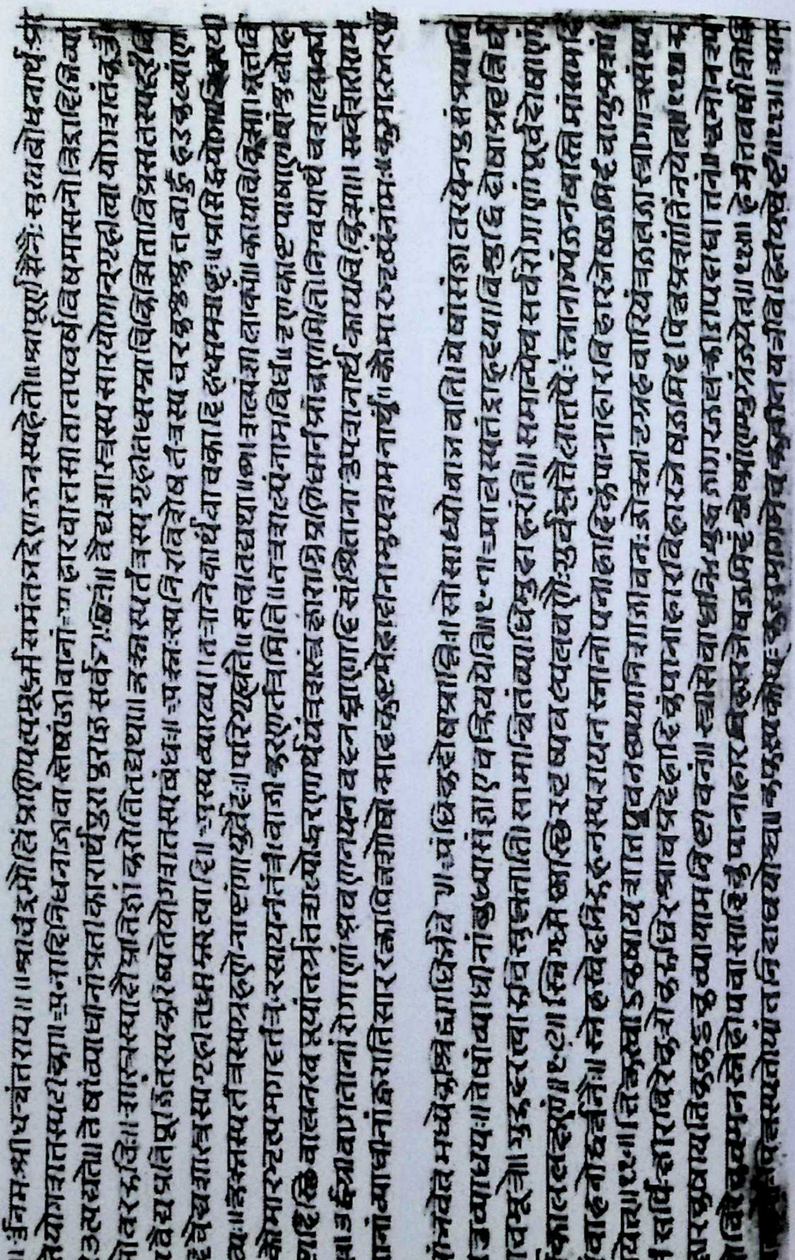

योगशतम् ब.४ प्रतिलिपि, प्राच्यविद्या-मंदिर, बड़ोदा (गुजरात) - हस्तलेख क्र. ९०५९. (आद्यन्त भाग)

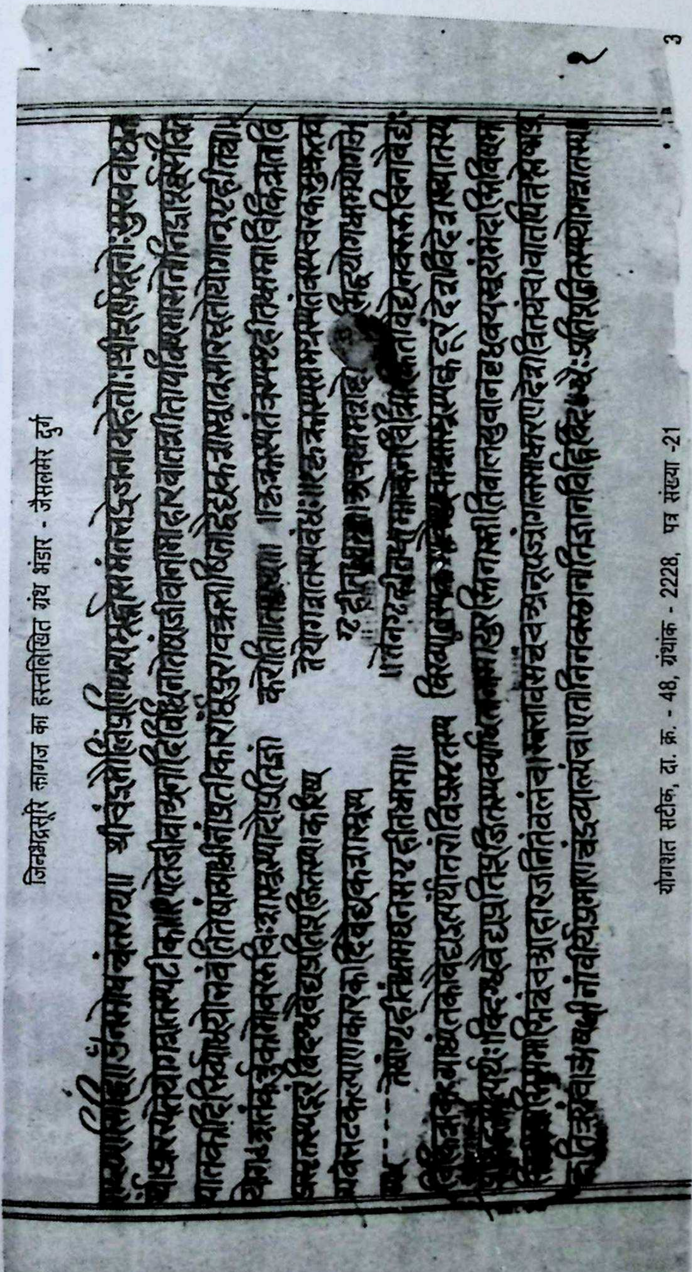

योगशतम् जै.-१. प्रतिलिपि, जिनभद्रसूरि हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार, जैसलमेर दुर्ग - ग्रन्थांक - २२२८. (प्रथम पृष्ठ)

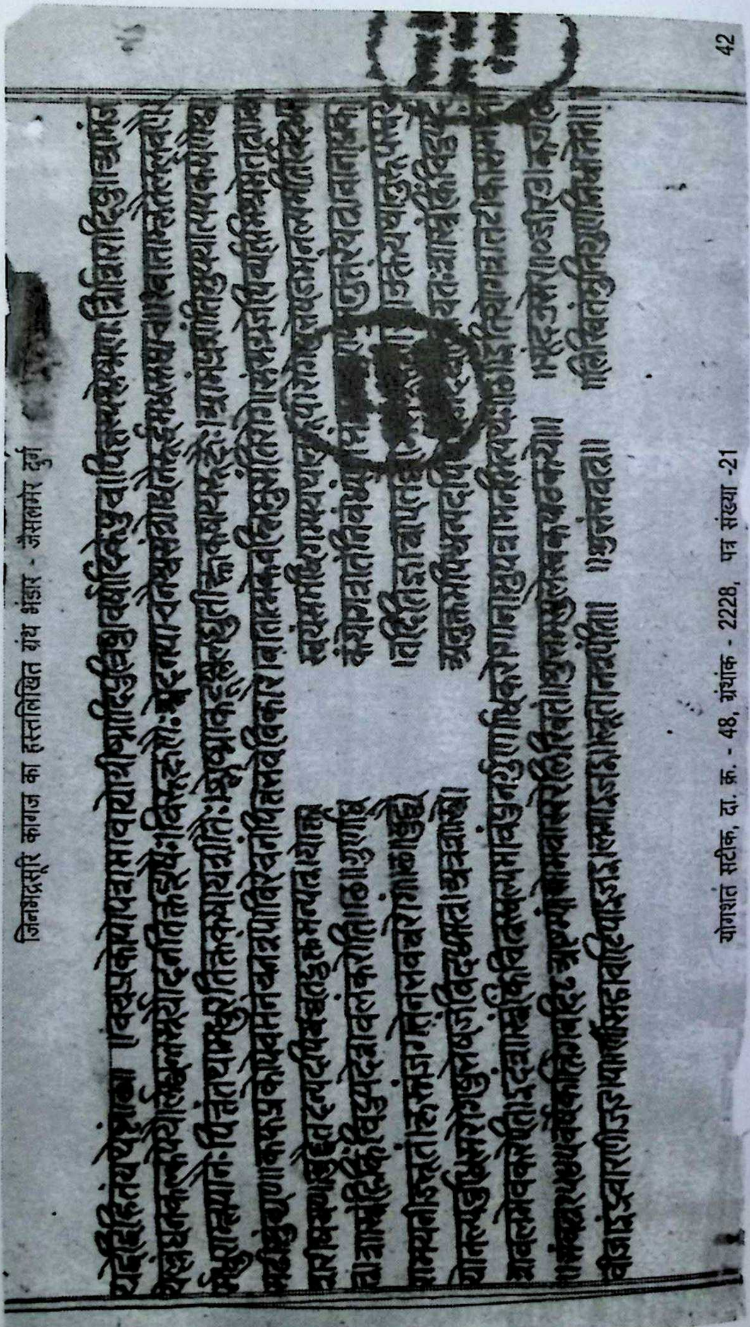

योगशतम् जै. -१. प्रतिलिपि, जिनभद्रसूरि हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार, जैसलमेर दुर्ग - ग्रन्थांक - २२२८. (प्रथम पृष्ठ)

परिशिष्ट- ४.

योगशतम् (मूलपाठः)

(उपेन्द्रवज्रा छन्द १-२)

कृत्स्नस्य तन्त्रस्य गृहीतधाम्न-
शिचकित्सिताद्विप्रसृतस्य दूरम्।
विदग्धवैद्यप्रतिपूजितस्य
करिष्यते योगशतस्य बन्धः।।१।।

परीक्ष्य हेत्वामयलक्षणानि
चिकित्सितज्ञेन चिकित्सकेन।
निरामदेहस्य हि भेषजानि
भवन्ति युक्तान्यमृतोपमानि।।२।।

(वसन्ततिलका छन्द)

छिन्नोद्भवाम्बुधरधन्वयवासविश्वै-
र्दुःस्पर्शपर्प्पटकमेघकिराततिक्तैः।
मुस्ताटरूषकमहौषधधन्वयासैः
क्वाथं पिबेदनिलपित्तकफज्वरेषु ।।३।।

(वंशस्थ छन्द)

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः
कृतः कषायः कफमारुतोत्तरे।
सश्वासकासारुचिपार्श्वरुक्करे
ज्वरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्यते।।४।।

(उपजाति छन्द ५-१४)

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ता-
हरीतकीभिः क्वथितः कषायः।
सामे सशूले कफवातयुक्ते
ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च।।५।।

द्राक्षाभयापर्प्पटकाब्दतिक्ता-
क्वाथं सशम्याकफलं विदध्यात्।
प्रलापमूर्छाभ्रमदाहशोष-
तृष्णान्विते पित्तभवे ज्वरे च।।६।।

निदिग्धिकानागरकामृतानां
क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम्।
जीर्णज्वरारोचककासशूल-
श्वासाग्निमान्द्यार्द्दितपीनसेषु।।७।।

दुरालभापर्प्पटकप्रियङ्गु-
भूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम्।
क्वाथं पिबेच्छर्करयावगाढं
तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः।।८।।

फलत्रिकं दारुनिशां विशालां
मुस्ताञ्च निष्क्वाथ्य निशांशकल्कम्।
पिबेत् कषायं मधुसम्प्रयुक्तं
सर्वप्रमेहेषु समुत्थितेषु।।९।।

सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः
सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः।

सामे सशूले च सशोणिते च
चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे।।१०।।

शुण्ठीं समुस्तातिविषां गुडूचीं
पिबेज्जलेन क्वथितां समांशाम्।
मन्दानलत्वे सततामताया-
मामानुबन्धे ग्रहणीगदे च।।११।।

पुनर्नवादार्वभयागुडूचीः
पिबेत् समूत्रा महिषाक्षयुक्ताः।
त्वग्दोषशोफोदरपाण्डुरोग-
स्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफामयेषु।।१२।।

मुस्ताखुकर्णीफलदारुशिग्रु-
क्वाथः सकृष्णाकृमिशत्रुकल्कः।
मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान्
कृमीन्निहन्यात् कृमिजांश्च रोगान्।।१३।।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेद-
कौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः।
क्वाथं पिबेदश्मजतुप्रधानं
सशर्करे साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे।।१४।।

(वसन्ततिलका छन्द)

एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां
चूर्णानि तण्डुलजले लुलितानि पीत्वा।
यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य सम्यग्-
आसन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री।।१५।।

(उपजाति छन्द १६-१८)

हरीतकी-गोक्षुर-राजवृक्ष-
पाषाणभिद्धन्वयवासकानाम्।
क्वाथं पिबेन्माक्षिकसम्प्रयुक्तं
कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे।।१६।।

वासा-गुडूची-चतुरङ्गुलाना-
मैरण्डतैलेन पिबन् कषायम्।
क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं
जयेदसृग्वातभवं विकारम्।।१७।।

रसाञ्जनं तन्दुलकस्य मूलं
क्षौद्रान्वितं तण्डुलतोयपीतम्।
असृग्दरं सर्वभवं निहन्ति
श्वासं च भार्गी सह नागरेण।।१८।।

(इन्द्रवज्रा छन्द)

एरण्ड-बिल्व-बृहतीद्वय-मातुलुङ्ग-
पाषाणभित्त्रिकटमूलकृतः कषायः।
सक्षारहिङ्गुलवणोरुबुतैलमिश्रः
श्रोण्यंस-मेढ्र-हृदय-स्तनरुक्षु पेयः।।१९।।

(उपजाति छन्द २०-२१)

चूर्णं समं रुचक-हिङ्गु-महौषधानां
शुण्ठ्यम्बुना कफसमीरणसम्भवासु।
हृत्पार्श्वपृष्ठजठरार्त्तिविसूचिकासु
पेयं तथा यवरसेन च विड्-विबन्धे।।२०।।

हिंगूग्रगन्धा-विड-शुण्ठ्यजाजी-
हरीतकी-पुष्करमूल-कुष्ठम्।
भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं
गुल्मोदराजीर्ण-विषूचिकासु।।२१।।

(वसन्ततिलका छन्द २२-२३)

पूतीकपत्र-गजचिर्भिट-चव्य-वह्नि-
व्योषं च संस्तरचितं लवणोपधानम्।
दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तुयुतं प्रयोज्यं
गुल्मोदर-श्वयथु-पाण्डु-गुदोद्भवेषु।।२२।।

शृङ्गीकटुत्रिक-फलत्रय-कण्टकारी-
भार्गी सपुष्करजटा लवणानि पञ्च।
चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्का-
श्वासोर्ध्ववातकसनारुचिपीनसेषु।।२३।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

नादेयी-कुटजार्क-शिग्रु-बृहती-स्नुग्-बिल्व-भल्लातक-
व्याघ्री-किंशुक-पारिभद्रक-जटापामार्ग-नीपाग्निकान्।
वासामुष्ककपाटलासलवणान् दग्ध्वा रसं पाचितं
हिंग्वादिप्रतिवापमेतदुचितं गुल्मोदराष्ठीलिषु।।२४।

(वसन्ततिलका छन्द २५-२७)

चव्याम्लवेतस-कटुत्रिक-तिन्तिडीक-
तालीस-जीरक-तुगा-दहनैः समांशैः।
चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धयुक्तं
वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम्।।२५।।

तालीसचव्यमरिचं सदृशं द्विरंशां
मूलानुगां मगधजां त्रिगुणां च शुण्ठीम्।
कृत्वा गुडत्रिगुणितां गुटिकां सुगन्धां
कासाग्निसाद-गुदज-ज्वररुक्षु दद्यात्।।२६।।

शुण्ठी-कणा-मरिच-नागदल-त्वगेलं
चूर्णीकृतं क्रमविवर्धितमूर्ध्वमन्त्यात्।
खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्य-
गुल्मारुचि-श्वसन-कण्ठहृदामयेषु।।२७।।

(इन्द्रवज्रा छन्द)

सिन्धूत्थहिङ्गुत्रिफलायवानी-
व्योषैर्गुडांशैर्गुडकान् प्रकुर्यात्।
तैर्भक्षितैस्तृप्तिमवाप्नुवन्ना
भुञ्जीत मन्दाग्निरपि प्रभूतम्।।२८।।

(उपजाति छन्द २९-३२)

गुडेन शुण्ठीमथवोपकुल्यां
पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा।
आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु
वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात्।।२९।।

अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः
सर्वैः समं माक्षिकधातुचूर्णम्।
तैर्मोदकः क्षौद्रयुतोऽनुतक्रः
पाण्ड्वामये दूरगतेऽपि शस्तः।।३०।।

हरीतकी-नागरमुस्तचूर्णै-
गुडेन मिश्रैर्गुटिका विधेया।
निवारयत्यास्यविधारितेयं
श्वासं प्रवृद्धं प्रबलं च कासम्।।३१।।

मनश्शिलामागधिकोषणानां
चूर्णं कपित्थाम्लरसेन युक्तम्।
लाजैस्समांशं मधुनावलीढं
छर्दिं प्रवृद्धामसकृन्निहन्ति।।३२।।

(वंशस्थ छन्द)

वटप्ररोहं मधु कुष्ठमुत्पलं
सलाजचूर्णं गुटिकां प्रकल्पयेत्।
समाक्षिका सा वदने विधारिता
तृषं प्रवृद्धामपि हन्ति सत्वरम्।।३३।।

(उपजाति छन्द ३४-३६)

दूर्वारसो दाडिमपुष्पजो वा
घ्राणप्रवृत्तेऽसृजि नस्यमुक्तम्।
स्तन्येन वालक्तरसेन वापि
विण्मक्षिकाणां च निहन्ति हिक्काम्।।३४।।

धात्रीफलं सर्जरसः सपाक्यः
सौवीरपिष्टश्च तदासुतश्च।
भवन्ति सिध्मानि यथा न
भूयस्तथेदमुद्वर्त्तनकं करोति।।३५।।

दूर्वाभया-सैन्धव-चक्रमर्द-
कुठेरका: काञ्जिकतक्रपिष्टा:।
त्रिभि: प्रलेपैरपि बद्धमूलां
दद्रूं च कण्डूं च विनाशयन्ति।।३६।

(इन्द्रवज्रा छन्द)

गण्डीरिका-चित्रक-मार्कवार्क-
कुष्ठद्रुमत्वग्लवणै: समूत्रै:।
तैलं पचेन्मण्डलदद्रुकुष्ठ-
दुष्टव्रणारु:किटिभापहारि।।३७।।

(वसन्ततिलका छन्द)

सिन्दूर-गुग्गुलु-रसाञ्जन-सिक्थ-तुत्थै-
स्तुल्यांशकै: कटुकतैलमिदं विपक्वम्।
कच्छूं स्रवत्पिटकिकामथवा विशुष्का-
मभ्यञ्जनेन सकृदुद्धरति प्रसह्य।।३८।।

(उपजाति छन्द)

सुवर्चिका-नागर-कुष्ठ-मूर्वा-
लाक्षा-निशा-लोहितयष्टिकाभि:।
तैलं ज्वरे षड्गुणतक्रसिद्ध-
मभ्यञ्जनाच्छीतविदाहजित् स्यात्।।३९।।

(इन्द्रवज्रा छन्द)

सर्पिर्गुडूचीवृषकण्टकारी-
क्वाथेन कल्केन च सिद्धमेतत्।
पेयं पुराणज्वरकासशूल-
श्वासाग्निमान्द्यग्रहणीगदेषु।।४०।।

(पुष्पिताग्रा छन्द)

वृषखदिरपटोलनिम्बपत्र-
त्वगमृतामलकीकषायकल्कैः।
घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं
जयति विसर्पमदास्रकुष्ठगुल्मान्।।४१।।

(मञ्जुभाषिणी छन्द)

अमृतापटोलपिचुमन्दधावनी-
त्रिफलाकरञ्जवृषकल्कवारिभिः।
घृतमुत्तमं विधिविपक्वमादृतः
प्रपिबन्निदं जयति कुष्ठमातुरः।।४२।।

(स्रग्धरा छन्द)

खण्डान् कूष्माण्डकानामथ पचनविधिस्विन्नशुष्काज्यभृष्टान्
न्यस्येत् खण्डे विपक्वे समरिचमगधा-शुण्ठ्यजाजी-त्रिगन्धैः।
लेहोऽयं बालवृद्धानिलरुधिरि-कृश-स्त्रीप्रसक्तिक्षतानां
तृष्णाकासास्रपित्तश्वसनगुदरुजाछर्दितानां च शस्तः।।४३।।

(उपजाति छन्द ४४-४९)

विपाच्य मूत्राम्लमधूनि दन्ती-
पिण्डीतकृष्णाबिडधूमकुष्ठैः।
वर्त्तिं कराङ्गुष्ठनिभां घृताक्तां
गुदे रुजानाहहरीं विदध्यात्।।४४।।

सशर्करं कुंकुममाज्यभृष्टं
नस्यं विधेयं पवनासृगुत्थे।
भ्रूकर्णशङ्खाक्षिशिरोऽर्द्धशूले
दिनाभिवृद्धिप्रभवे च रोगे।।४५।।

पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजै-
त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्त्तिम्।
तयाञ्जयेत् तत्सपदि प्रवृद्ध-
मक्ष्णोर्जयेत् कष्टमपि प्रकोपम्।। ४६।।

हरीतकी-सैन्धव-ताक्ष्र्यशैलैः
सगैरिकैः स्वच्छजलेन पिष्टैः।
बहिः प्रलेपं नयनस्य कुर्यात्
सर्वाक्षिरोगप्रशमार्थमेतम्।।४७।।

ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं
सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम्।
आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्यात्
कण्डूञ्च दाहञ्च रुजञ्च हन्यात्।।४८।।

हन्त्यर्जुनं शर्करयाब्धिफेनो
नक्तान्धतां गोशकृता च कृष्णा।
रसाञ्जनं व्योषयुतं च पिल्लं
तापीसमुत्थं मधुना च शुक्लम्।।४९।।

(वसन्ततिलका छन्द)

पुष्पाख्य-ताक्ष्र्यज-सितोदधिफेनसर्ज-
सिन्धूत्थ-गैरिक-शिला-मरिचैः समांशैः।
पिष्टैस्तु माक्षिकरसेन रसक्रियेयं
हन्त्यन्धतां च तिमिरार्जुनवर्त्मरोगान्।।५०।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द ५१-५२)

मुस्तोशीररजो यवाः समरिचं सिन्धूद्भवं कट्फलम्।
दार्वीतुत्थकशङ्खफेननलदं कालानुसार्यञ्जनम्।
तुल्यं चूर्णितमायसे विनिहितं क्षौद्रान्वितं शस्यते
कण्ड्वर्म्मामयरक्तराजितिमिरे पिल्लोपदेहेषु च।।५१।।

मञ्जिष्ठा-मधुकोत्पलोदधिकफ-त्वक्-सेव्य-गोरोचना-
मांसी-चन्दन-शङ्खपत्र-गिरिमृत्तालीस-पुष्पाञ्जनैः।
सर्वैरेव समांशमनञ्जनमिदं शस्तं सदा चक्षुषोः
कण्डूक्लेदमलास्रशोणितरुजापिल्लार्मशुक्लापहम्।।५२।।

(उपजाति छन्द ५३-५५)

क्वाथः समुस्तातिविषेन्द्रदारु-
कलिङ्गपाठाकटुरोहिणीनाम्।
गोमूत्रसिद्धो मधुना च युक्तः
श्रेष्ठो गलव्याधिषु सर्वजेषु।।५३।।

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां
रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम्।
क्षौद्रेण कुर्याद् गुटिकां मुखेन
तां धारयेत् सर्वगलामयेषु।।५४।।

दार्वीगुडूचीसुमनःप्रवाल-
द्राक्षा-यवानी-त्रिफलाकषायः।
क्षौद्रेण युक्तः कवलग्रहोऽयं
मुखस्य पाकं शमयत्युदीर्णम्।।५५।।

(शालिनी छन्द)

कुष्ठं दार्वी लोध्रमब्दं समङ्गा
पाठा तिक्ता तेजनी पीतिका च।
चूर्णं शस्तं घर्षणं तद् द्विजानां
रक्तस्रावं हन्ति कण्डूरुजश्च।।५६।।

(इन्द्रवज्रा छन्द)

सौवीर-शुक्तार्द्रक-मातुलुङ्ग-
मांसीरसैर्गुग्गुलुसैन्धवैश्च।
पक्त्वा च तैलं कटुकं निषिञ्चेत्
तत्कर्णयोः कर्णरुजोपशान्त्यै।।५७।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द ५८-५९)

वासानिम्बपटोलपर्पटफलश्रीमुस्तदार्व्यम्बुदै-
स्तिक्तोशीरदुरालभा-त्रिकटुक-त्रायन्तिकाचन्दनैः।
सर्पिः सिद्धमथोर्ध्वजत्रुविकृतिघ्राणाक्षिशूलादिषु
त्वग्दोषे ज्वरविद्रधिव्रणरुजाशुक्रेषु चैवेष्यते।।५८।।

दार्वीपर्प्पटनिम्बवत्सककणादुःस्पर्शयष्टिवृषा-
स्त्रायन्तीत्रिफलापटोलकटुकाभूनिम्बरक्ताम्बुदाः।
एषां कल्ककषायसाधितमिदं सर्पिः प्रशस्तं दृशः
पित्तासृक्प्रभवेषु सर्वतिमिरेषूर्ध्वेषु च व्याधिषु।।५९।।

(मत्तमयूर छन्द)

शुक्लैरण्डान्मूलमथोग्रा शतपुष्पा
पुष्पोद्भूतं यच्च बृहत्यास्तगरञ्च।
पक्वं तैलं तैः सपयस्कैस्तिमिरघ्नं
नस्यं श्रेष्ठं व्याधिषु चोर्ध्वेष्वपरेषु।।६०।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

क्वाथे मुष्ककभस्मनोऽनलशिखादग्धं क्षिपेच्छङ्खकं
तत्तेनैव पुनर्जलेन विपचेत् क्षारं स तैले विधि:।
युञ्ज्यात्तद् व्रणदुष्टिषु व्रणरुजास्वर्शस्सु नाडीषु च
त्वग्दोषेषु भगन्दरे च विविधे कण्ठामये च स्थिरे।।६१।।

(वंशस्थ छन्द)

निशा सयष्टीमधुपद्मकोत्पलै:
प्रियङ्गुकाशाबरलोध्रचन्दनै:।
विपाच्य तैलं पयसा प्रयोजयेत्
क्षतेषु संरोहणदाहनाशनम्।।६२।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुका-दार्वीनिशासारिवा-
मञ्जिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजै: समै:।
सर्पि: सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिता: स्राविणो
गम्भीरा: सरुजो व्रणा: सगतिका: शुध्यन्ति रोहन्ति च।।६३।।

(वंशस्थ छन्द)

शिरीषपुष्पस्वरसेन भावितं
त्रिसप्तकृत्वो मरिचं सिताह्वयम्।
प्रयोजयेदञ्जन-पान-नावनै-
र्विमोहितानामपि सर्पदंशिनाम्।।६४।।

(इन्द्रवज्रा छन्द)

तैलं तिलानां पललं गुडं च
क्षीरं तथार्कं सममेव पीतम्।
आलर्कमुग्रं विषमाशु हन्ति
सद्योद्भवं वायुरिवाभ्रवृन्दम्।।६५।।

(उपजाति छन्द ६६-६७)

मयूरपित्तेन च तण्डुलीयं
काकाण्डयुक्तं प्रपिबेदनल्पम्।
विषाण्यसौ स्थावरजङ्गमानि
सोपद्रवाण्यप्यचिरेण हन्ति।।६६।।

आगारधूमो महिषाक्षयुक्तः
सवाजिगन्धोऽन्विततण्डुलीयः।
गोमूत्रपिष्टो ह्यगदो निहन्ति
विषाणि सस्थावरजङ्गमानि।।६७।।

(स्रग्धरा छन्द)

मांसीसेव्यालकौन्तीजलजलदशिलारोचनापद्मकेशी-
स्पृक्काचण्डाहरिद्रागदसितपलितासृग्लतापद्मकैलाः।
तुल्यं गौराष्टभागाश्चतुरिभकुसुमा वर्त्तयः सर्वयोग्याः
कृत्याऽलक्ष्मीपिशाचज्वरविषमगरान्घ्नन्ति चन्द्रोदयाख्याः।।६८।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द ६९-७०)

सिद्धार्थत्रिफलाशिरीषकटभीश्वेताकरञ्जामरं
मञ्जिष्ठा रजनीद्वयं त्रिकटुकं श्यामावचाहिङ्गु च।
शस्तं छागलमूत्रपिष्टमगदं सर्वग्रहोच्चाटनं
कृत्योन्मादविषज्वरप्रशमनं पानादिभिर्योजितम्।।६९।।

कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतकै-
स्त्वग्वांशीवृकदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोचनैः।
नागेन्द्रद्विजशृङ्गहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैश्च धूपः कृतः
स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नः स्मृतः।।७०।।

(दण्डक- चण्डवृष्टिप्रपात छन्द)

त्रिकटुकदलकुङ्कुमग्रन्थिकक्षारसिंही-
निशादारुसिद्धार्थयुग्माम्बुशक्राह्वयैः।
सितलशुनफलत्रिकोशीरतिक्तावचा-
तुत्थयष्टीबलालोहितैलाशिलापद्मकैः।।
दधितगरमधूकसारप्रियाह्वाविषाख्याविषा-
तार्क्ष्यशैलैः सचव्यामयैः कल्कितैः।
घृतमनवमशेषमूत्रांशसिद्धं मतं भूतरावाह्वयं
पानतस्तद् ग्रहघ्नं परम्।।७१।।

(दण्डक- व्याल छन्द)

नतमधुककरञ्जलाक्षापटोलीसमङ्गावचापाटली-
हिङ्गुसिद्धार्थसिंहीनिशायुग्लतारोहिणी-
बदरकटुफलत्रिकाकाण्डदारुकृमिघ्नाजगन्धामरा-
ङ्कोलकोशातकीशिग्रुनिम्बाम्बुदेन्द्राह्वयैः।
गदशुकतरुपुष्पबीजाम्बुयष्ट्यद्रिकर्णीनिकुम्भाग्नि-
बिल्वैः समैः कल्कितैर्मूत्रवर्गेण सिद्धं घृतं
चिरविनिहितमाशु सर्वैः क्रमैर्योजितं हन्ति सर्व-
ग्रहोन्मादकुष्ठज्वरांस्तन्महाभूतरावं स्मृतम्।।७२।।

(इन्द्रवज्रा छन्द)

दार्वी हरिद्रा कुटजस्य बीजं
शृङ्गी च यष्टीमधुकं च तुल्यम्।
क्वाथः शिशोः स्तन्यकृते च दोषे
सर्वातिसारेषु च सर्वदेष्टः।।७३।।

(उपजाति छन्द ७४-७५)

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां
जलं सलोध्रं गजपिप्पली च।
क्वाथावलेहौ मधुना प्रशस्तौ
बालेषु योज्यावतिसारितेषु।।७४।।

शृङ्गीं सकृष्णातिविषां विचूर्ण्य
लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम्।
कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां
समाक्षिकां चातिविषामथैकाम्।।७५।।

(स्रग्धरा छन्द)

धात्रीचूर्णस्य कंसं स्वरसपरिगतं क्षौद्रसर्पि:समांशं
कृष्णामानीसिताष्टप्रसृतिसमयुतं स्थापितं धान्यराशौ।
वर्षान्ते तत्समश्नन् भवति विपलितो रूपवर्णप्रभावा-
न्निर्व्याधिर्बुद्धिमेधास्मृतिवचनबलस्थैर्यसत्त्वैरुपेत:।।७६।।

(वियोगिनी छन्द)

मधुकं मधुना घृतेन च प्रलिहन् क्षीरमनु प्रयोजयेत्।
लभतेऽपि च नात्मन: क्षयं प्रमदानां प्रियतां च गच्छति।।७७।।

(उपजाति छन्द ७८-८१)

यष्टीतुगासैन्धवपिप्पलीभि:
सशर्कराभिस्त्रिफला प्रयुक्ता।
आयु:प्रदा वृष्यतमातिमेध्या
भवेज्जराव्याधिविनाशनी च।।७८।।

चूर्णं श्वदंष्ट्रामलकाऽमृतानां
लिहन् ससर्पिर्मधुभागयुक्तम्।
वृष्यः स्थिरः शान्तविकारदुःखः
समाः शतं जीवति कृष्णकेशः।।७९।।

यष्टीकषायो लवणाग्र्ययुक्तः
कलिङ्गकृष्णाफलकल्कमिश्रः।
सक्षौद्रमेतद् वमनं प्रयोज्यं
कण्ठामयास्यश्रवणामयेषु।।८०।।

हरीतकीभिः क्वथितं सुवीरं
दन्त्यर्द्धकृष्णाविडचूर्णयुक्तम्।
विरेचनं सोरुबुतैलमेत-
न्निरत्ययं योज्यमथामयघ्नम्।।८१।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

रास्नाराठफलत्रयामृतलतायुक्पञ्चमूलीबला-
माषक्वाथयुतः सतैललवणक्षौद्रः ससर्पिर्गुडः।
पुष्पाह्वाघनबिल्वकुष्ठफलिनीकृष्णावचाकल्कितो
वस्तिः काञ्जिकदुग्धमूत्रसहितो वातामयेभ्यो हितः।।८२।।

(वसन्ततिलका छन्द)

तैलं बलाक्वथनकल्कसुगन्धिगर्भं
सिद्धं पयोदधितुषोदकमस्तुचुक्रैः।
तद्वत्सहाचरसरण्यमृतावरीभिः
प्रत्येकपक्वमनुवासनमीरणघ्नम्।।८३।।

(उपजाति छन्द ८४-८५)

नस्यं विदध्याद् गुडनागरं वा
ससैन्धवां मागधिकामथो वा।
घ्राणास्यमन्याहनुबाहुपृष्ठ-
शिरोऽक्षिरोगश्रवणामयेषु।।८४।।

इत्येते विधिविहिताः प्रसिद्धयोगाः
सिद्ध्यर्थं विनिगदिता भिषग्वराणाम्।
दृष्ट्वैतान् कथमचिकित्सकोऽपि युञ्ज्या-
दित्यर्थः पुनरपि वक्ष्यतेऽत्र किञ्चित्।।८५।।

(वसन्ततिलका छन्द ८६-८८)

सन्धारणाध्यशनजागरणोच्चभाष्य-
व्यायामयानकटुतिक्तकषायरूक्षैः।
चिन्ताव्यवायभयलङ्घनशोकशीतै-
र्वायुः प्रकोपमुपयाति घनागमे च।।८६।।

कट्वम्लमद्यलवणोष्णविदाहितीक्ष्णैः
क्रोधातपानलपरिश्रमशुष्कशाकैः
क्षारैरजीर्णविषमाशनसेवनैश्च
पित्तं प्रकोपमुपयाति घनात्यये च।।८७।।

स्वप्नाद्दिवामधुरशीतलमत्स्यमांसै-
र्गुर्वम्लपिच्छिलतिलेक्षुपयोविकारैः।
स्निग्धातितृप्तिलवणोदकपानभक्षैः
श्लेष्मा प्रकोपमुपयाति तथा वसन्ते।।८८।।

(उपजाति छन्द ८९-९२)

त एवमेते क्रमशो द्विशो वा
दोषाः प्रवृद्धा युगपत्त्रयो वा
कुर्वन्ति रोगान् विविधान् शरीरे
संख्यानसञ्ज्ञातिगताननेकान्।।८९।।

पारुष्य-सङ्कोचन-तोद-शूल-
श्यामत्व-पाण्डुत्वमथाङ्गपीडाः।।
सुप्तत्व-शीतत्व-खरत्व-शोषान्
कर्माणि वायोः प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।।९०।।

परिश्रमस्वेदविदाहराग-
वैगन्ध्यसंक्लेदविपाककोपान्।
प्रलापमूर्छाभ्रमपीतभावान्
पित्तस्य कर्माणि विदन्ति तज्ज्ञाः।।९१।।

श्वेतत्वशीततत्वगुरुत्वकण्डू-
स्नेहोपदेहस्तिमितत्वलेपान्।
उत्सेधसंघातचिरक्रियाश्च
कफस्य कर्माणि वदन्ति तज्ज्ञाः।।९२।।

(इन्द्रवज्रा छन्द)

एतानि लिङ्गानि च तत्कृतानां
सर्वामयानामपि नैकनाम्नाम्।
कश्चिद् भवेत् प्राप्तिविशेष एषां
सञ्ज्ञान्तरं येन तु सम्प्रयान्ति।।९३।।

(उपजाति छन्द ९४-९५)

आलस्यतन्द्राहृदयाविशुद्धि-
दोषाप्रवृत्त्याकुलमूत्रताभिः।
गुरूदरत्वारुचिसुप्तताभि-
रामान्वितं व्याधिमुदाहरन्ति।।९४।।

आमं जयेल्लङ्घनकोलपेया-
लघ्वन्नसूपौदनतिक्तयूषैः।
विरूक्षण-स्वेदन-पाचनैश्च
संशोधनैरूर्ध्वमधस्तथा च।।९५।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द ९६-९८)

स्निग्धोष्णस्थिरवृष्यबल्यलवणस्वाद्वम्लतैलातपः-
स्नानाभ्यञ्जनबस्तिमांसमदिरासंवाहनोन्मर्दनम्।
स्नेहस्वेदनिरूहनस्यशयनस्थानोपनाहादिकं
पानाहारविहारभेषजमिदं वातं प्रशान्तिं नयेत्।।९६।।

तिक्तस्वादुकषायशीतपवनच्छायानिशावीजनं
ज्योत्स्नाभूगृहयन्त्रवारिजलजस्त्रीगात्रसंस्पर्शनम्।
सर्पिःक्षीरविरेकसेकरुधिरस्रावप्रदेहादिकं
पानाहारविहारभेषजमिदं पित्तं प्रशान्तिं नयेत्।।९७।।

रूक्षक्षारकषायतिक्तकटुकव्यायामनिष्ठीवनं
स्त्रीसेवाध्वनियुद्धजागरजलक्रीडापदाघातनम्।
धूमात्युष्णशिरोविरेकवमनस्वेदोपवासादिकं
पानाहारविहारभेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं जयेत्।।९८।।

(उपजाति छन्द ९९-१००)

कफप्रकोपे वमनं सनस्यं
विरेचनं पित्तभवे विकारे।
वातात्मके वस्तिमुदाहरन्ति
संसर्गजे तु व्यतिमिश्रमेतत्।।९९।।

हेमन्तवर्षाशिशिरेषु वायोः
पित्तस्य वर्षान्तनिदाघयोश्च।
कफस्य कोपः कुसुमागमे च
कुर्वीत यद्यद्विहितं यथैषाम्।।१००।।

(वसन्ततिलका छन्द)

वातोऽम्लतैललवणैर्मधुरान्नपानैः
पित्तं तथा मधुरतिक्तकषायशीतैः।
श्लेष्मापि तिक्तकटुरूक्षकषायतीक्ष्णै-
रामः प्रशान्तिमुपयात्यपतर्पणेन।।१०१।।

बुद्ध्वैतदन्यदपि यद्यदनुक्तमत्र
युक्त्या स्वयं समधिगम्य यथानुरूपम्।
रोगेषु भेषजमनल्पमतिर्विदध्यात्
शास्त्रं हि किञ्चिदुपदेशबलं करोति।।१०२।।

(उपजाति छन्द)

गुणाधिकं योगशतं निबध्य
प्राप्तं मया पुण्यमनुत्तमं यत्।
नानाप्रकारामयनीडभूतं
कृत्स्नं जगत्तेन भवत्वरोगम्।।१०३।।

।। इति अमितप्रभ-विरचितं योगशतं सम्पूर्णम्।।

परिशिष्ट-५.

योगशत में प्रयुक्त छन्द

इन्द्रवज्रा- (७) २८, ३७, ४०, ५७, ६५, ७३, ९३,

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। (वृत्तरत्नाकर- ३.२८)

उपेन्द्रवज्रा- (२) १, २;

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। (वृत्तरत्नाकर- ३.२९)

उपजाति- (५१) ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९,२०, २१, २९, ३०, ३१, ३२, ३४, ३५, ३६, ३९, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५३, ५४, ५५, ६६, ६७, ७४, ७५, ७८, ७९, ८०, ८१, ८४, ८९, ९०, ९१, ९२, ९४, ९५, ९९, १००, १०३;

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।

(वृत्तरत्नाकर- ३.३०)

दण्डक- (चण्डवृष्टिप्रपात) (१) ७१;

प्रतिचरणविवृद्धरेफाः स्युरर्णार्णवव्यालजीमूत-
लीलाकरोद्दामशङ्खादयः।। (वृत्तरत्नाकर- ३.११३)

दण्डक (व्याल)- (१) ७२;

प्रतिचरणविवृद्धरेफाः स्युरर्णार्णवव्यालजीमूत-
लीलाकरोद्दामशङ्खादयः। (वृत्तरत्नाकर- ३.११३)

पुष्पिताग्रा- (१) ४१; अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा। (वृत्तरत्नाकर- ४.१०)

प्रहर्षिणी- (१) ८५; म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्।

(वृत्तरत्नाकर- ३.७०)

मञ्जुभाषिणी- (१) ४२; सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी।
(वृत्तरत्नाकर- ३.७४)

मत्तमयूरम्- (१) ६०; वेदै रन्ध्रैर्म्तौ यसगा मत्तमयूरम्।
(वृत्तरत्नाकर- ३.७२)

वंशस्थ- (४) ४, ३३, ६२, ६४;
जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ। (वृत्तरत्नाकर- ३.४६)

वसन्ततिलका- (१५) ३, १५, २२, २३, २५, २६, २७, ३८, ५०, ८३, ८६, ८७, ८८, १०१, १०२;
उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः। (वृत्तरत्नाकर- ३.७९)

वियोगिनी- (१) ७७; विषमे ससजा गुरुः समे सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी।

शार्दूलविक्रीडितम्- (१३) २४, ५१, ५२, ५८, ५९, ६१, ६३, ६९, ७०, ८२, ९६, ९७, ९८,
सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।
(वृत्तरत्नाकर- ३.१०१)

शालिनी- (१) ५६; शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः।
(वृत्तरत्नाकर- ३.३४)

स्रग्धरा- (३) ४३, ६८, ७६;
म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम्।
(वृत्तरत्नाकर- ३.१०४)

सकल पद्य संख्या-१०३;

।। इति योगशत-गत-छन्दोविवरणम्।।

परिशिष्ट- ६.

योगशत-श्लोकचरणानुक्रमणिका

यहां योगशतीय पद्यों के चारों चरणों की अनुक्रमणिका प्रस्तुत की जा रही है। प्रथम चरण गाढ अक्षरों में मुद्रित किया गया है।

अमृतापटोलपिचुमन्दधावनी- ४२.१
अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागै: ३०.१
असृग्दरं सर्वभवं निहन्ति १८.३
आगारधूमो महिषाक्षयुक्त: ६७.१
आमं जयेल्लङ्घनकोलपेया- ९५.१
आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु २९.३
आयु:प्रदा वृष्यतमातिमेध्या ७८.३
आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ता- ५.१
आलर्कमुग्रं विषमाशु हन्ति ६५.३
आलस्यतन्द्राहृदयाविशुद्धि- ९४.१
आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्यात् ४८.३
आसन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री १५.४
इत्येते विधिविहिता: प्रसिद्धयोगा: ८५.१
उत्सेधसंघातचिरक्रियाश्च ९२.३
एतानि लिङ्गानि च तत्कृतानां ९३.१
एरण्ड-बिल्व-बृहतीद्वय-मातुलुङ्ग- १९.१
एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां १५.१
एलोपकुल्यामधुकाश्मभेद- १४.१

एषां कल्ककषायसाधितमिदं सर्पिः प्रशस्तं दृशः	५९.३
कच्छूं स्रवत्पिटकिकामथवा विशुष्का-	३८.३
कट्वम्लमद्यलवणोष्णविदाहितीक्ष्णैः	८७.१
कण्ठामयास्यश्रवणामयेषु	८०.४
कण्डूञ्च दाहञ्च रुजञ्च हन्यात्	४८.४
कण्डूक्लेदमलास्रशोणितरुजापिल्लार्मशुक्लापहम्	५२.४
कण्ड्वर्म्मामयरक्तराजितिमिरे पिल्लोपदेहेषु च	५१.४
कफप्रकोपे वमनं सनस्यं	९९.१
कफस्य कर्माणि वदन्ति तज्ज्ञाः	९२.४
कफस्य कोपः कुसुमागमे च	१००.३
करिष्यते योगशतस्य बन्धः	१.४
कर्माणि वायोः प्रवदन्ति तज्ज्ञाः	९०.४
कलिङ्गकृष्णाफलकल्कमिश्रः	८०.२
कलिङ्गपाठाकटुरोहिणीनाम्	५३.२
कश्चिद् भवेत् प्राप्तिविशेष एषां	९३.३
काकाण्डयुक्तं प्रपिबेदनल्पम्	६६.२
कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतकै-	७०.१
कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां	७५.३
कासाग्निसाद-गुदज-ज्वररुक्षु दद्यात्	२६.४
कुठेरकाः काञ्जिकतक्रपिष्टाः	३६.२
कुर्वन्ति रोगान् विविधान् शरीरे	८९.३
कुर्वीत यद्यद्विहितं यथैषाम्	१००.४
कुष्ठं दार्वी लोध्रमब्दं समङ्गा	५६.१
कुष्ठद्रुमत्वग्लवणैः समूत्रैः	३७.२
कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे	१६.४

कृतः कषायः कफमारुतोत्तरे ४.२
कृत्याऽलक्ष्मीपिशाचज्वरविषमगराघ्नन्ति चन्द्रोदयाख्याः ६८.४
कृत्योन्मादविषज्वरप्रशमनं पानादिभिर्योजितम् ६९.४
कृत्वा गुडत्रिगुणितां गुटिकां सुगन्धां २६.३
कृत्स्नं जगत्तेन भवत्वरोगम् १०३.४
कृत्स्नस्य तन्त्रस्य गृहीतधाम्न- १.१
कृमीन्निहन्यात् कृमिजांश्च रोगान् १३.४
कृष्णामानीसिताष्टप्रसृतिसमयुतं स्थापितं धान्यराशौ ७६.२
कौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः १४.२
क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं १७.३
क्रोधातपानलपरिश्रमशुष्कशाकैः ८७.२
क्वाथं पिबेच्छर्करयावगाढं ८.३
क्वाथं पिबेदनिलपित्तकफज्वरेषु ३.४
क्वाथं पिबेदशमजतुप्रधानं १४.३
क्वाथं पिबेन्माक्षिकसम्प्रयुक्तं १६.३
क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ७.२
क्वाथं सशम्याकफलं विदध्यात् ६.२
क्वाथः शिशोः स्तन्यकृते च दोषे ७३.३
क्वाथः सकृष्णाकृमिशत्रुकल्कः १३.२
क्वाथः समुस्तातिविषेन्द्रदारु- ५३.१
क्वाथावलेहौ मधुना प्रशस्तौ ७४.३
क्वाथे मुष्ककभस्मनोऽनलशिखादग्धं क्षिपेच्छङ्खकं ६१.१
क्वाथेन कल्केन च सिद्धमेतत् ४०.२
क्षतेषु संरोहणदाहनाशनम् ६२.४
क्षारैरजीर्णविषमाशनसेवनैश्च ८७.३

क्षीरं तथार्कं सममेव पीतम् ६५.२

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः ४.१

क्षौद्रान्वितं तण्डुलतोयपीतम् १८.२

क्षौद्रेण कुर्याद् गुटिकां मुखेन ५४.३

क्षौद्रेण युक्तः कवलग्रहोऽयं ५५.३

खण्डान् कूष्माण्डकानामथ पचनविधिस्विन्नशुष्काज्यभृष्टान् ४३.१

खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्य- २७.३

गण्डीरिका-चित्रक-मार्कवार्क- ३७.१

गदशुकतरुपुष्पबीजाम्बुयष्ट्यद्रिकर्णीनिकुम्भाग्नि- ७२.३

गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुध्यन्ति रोहन्ति च ६३.४

गुडेन मिश्रैर्गुटिका विधेया ३१.२

गुडेन शुण्ठीमथवोपकुल्यां २९.१

गुणाधिकं योगशतं निबध्य १०३.१

गुदे रुजानाहहरीं विदध्यात् ४४.४

गुरूदरत्वारुचिसुप्तताभि- ९४.३

गुर्वम्लपिच्छिलतिलेक्षुपयोविकारैः ८८.२

गुल्मारुचि-श्वसन-कण्ठहृदामयेषु २७.४

गुल्मोदर-श्वयथु-पाण्डु-गुदोद्भवेषु २२.४

गुल्मोदराजीर्ण-विषूचिकासु २१.४

गोमूत्रपिष्टो ह्यगदो निहन्ति ६७.३

गोमूत्रसिद्धो मधुना च युक्तः ५३.३

घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं ४१.३

घृतमुत्तमं विधिविपक्वमादृतः ४२.३

घ्राणप्रवृत्तेऽसृजि नस्यमुक्तम् ३४.२

घ्राणास्यमन्याहनुबाहुपृष्ठ- ८४.३

चव्याम्लवेतस-कटुत्रिक-तिन्तिडीक- २५.१
चिकित्सितज्ञेन चिकित्सकेन २.२
चिन्ताव्यवायभयलङ्घनशोकशीतैः ८६.३
चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे १०.४
चिरविनिहितमाशु सर्वैः क्रमैर्योजितं हन्ति सर्व- ७२.४
चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्का- २३.३
चूर्णं कपित्थाम्लरसेन युक्तम् ३२.२
चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धयुक्तं २५.३
चूर्णं शस्तं घर्षणं तद् द्विजानां ५६.३
चूर्णं श्वदंष्ट्रामलकाऽमृतानां ७९.१
चूर्णं समं रुचक-हिङ्गु-महौषधानां २०.१
चूर्णीकृतं क्रमविवर्धितमूर्ध्वमन्त्यात् २७.२
चूर्णानि तण्डुलजले लुलितानि पीत्वा १५.२
छर्दिं प्रवृद्धामसकृन्निहन्ति ३२.४
छिन्नोद्भवाम्बुधरधन्वयवासविश्वैः- ३.१
जयति विसर्पमदास्रकुष्ठगुल्मान ४१.४
जयेदसृग्वातभवं विकारम् १७.४
जलं सलोध्रं गजपिप्पली च ७४.२
जातीनिम्बपटोलपत्रकटुका-दार्वीनिशासारिवा- ६३.१
जीर्णज्वरारोचककासशूल- ७.३
ज्योत्स्नाभूगृहयन्त्रवारिजलजस्त्रीगात्रसंस्पर्शनम् ९७.२
ज्वरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्यते ४.४
ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ५.४
त एवमेते क्रमशो द्विशो वा ८९.१
तत्कर्णयोः कर्णरुजोपशान्त्यै ५७.४

तत्तेनैव पुनर्जलेन विपचेत् क्षारं स तैले विधिः	६१.२
तद्वत्सहाचरसरण्यमृतावरीभिः	८३.४
तयाञ्जयेत् तत्सपदि प्रवृद्ध-	४६.३
तां धारयेत् सर्वगलामयेषु	५४.४
तापीसमुत्थं मधुना च शुक्लम्	४९.४
तालीसचव्यमरिचं सदृशं द्विरंशां	**२६.१**
तालीस-जीरक-तुगा-दहनैः समांशैः	२५.२
तिक्तस्वादुकषायशीतपवनच्छायानिशावीजनं	**९७.१**
तुल्यं गौराष्टभागाश्चतुरिभकुसुमा वर्त्तयः सर्वयोग्याः	६८.३
तुल्यं चूर्णितमायसे विनिहितं क्षौद्रान्वितं शस्यते	५१.३
तुल्यांशकैः कटुकतैलमिदं विपक्वम्	३८.२
तृषं प्रवृद्धामपि हन्ति सत्वरम्	३३.४
तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः	८.४
तृष्णाकासास्रपित्तश्वसनगुदरुजां छर्दितानां च शस्तः	४३.४
तृष्णान्विते पित्तभवे ज्वरे च	६.४
तैर्भक्षितैस्तृप्तिमवाप्नुवन्ना	२८.३
तैर्मोदकः क्षौद्रयुतोऽनुतक्रः	३०.३
तैलं ज्वरे षड्गुणतक्रसिद्ध-	३९.३
तैलं तिलानां पललं गुडं च	**६५.१**
तैलं पचेन्मण्डलदद्रुकुष्ठ-	३७.३
तैलं बलाक्वथनकल्कसुगन्धिगर्भं	**८३.१**
त्रायन्ती त्रिफलापटोलकटुकाभूनिम्बरक्ताम्बुदाः	५९.२
त्रिकटुकदलकुङ्कुमग्रन्थिकक्षारसिंही-०	**७१.१**
त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्त्तिम्	४६.२
त्रिफलाकरञ्जवृषकल्कवारिभिः	४२.२

त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलां ३६.३
त्रिसप्तकृत्वो मरिचं सिताह्वयम् ६४.२
त्वगमृतामलकीकषायकल्कैः ४१.२
त्वग्दोषशोफोदरपाण्डुरोग- १२.३
त्वग्दोषे ज्वरविद्रधिव्रणरुजाशुक्रेषु चैवेष्यते ५८.४
त्वग्दोषेषु भगन्दरे च विविधे कण्ठामये च स्थिरे ६१.४
दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तुयुतं प्रयोज्यं २२.३
दद्रूं च कण्डूं च विनाशयन्ति ३६.४
दधितगरमधूकसारप्रियाह्वाविषाख्याविषा-० ७१.३
दन्त्यर्द्धकृष्णाविडचूर्णयुक्तम् ८१.२
दार्वी हरिद्रा कुटजस्य बीजं ७३.१
दार्वीगुडूचीसुमनःप्रवाल- ५५.१
दार्वीतुत्थकशङ्खफेननलदं कालानुसार्यञ्जनम् ५१.२
दार्वीपर्प्पटनिम्बवत्सककणादुःस्पर्शयष्टिवृषाः- ५९.१
दित्यर्थः पुनरपि वक्ष्यतेऽत्र किञ्चित् ८५.४
दिनाभिवृद्धिप्रभवे च रोगे ४५.४
दुःस्पर्शपर्प्पटकमेघकिराततिक्तैः ३.२
दुरालभापर्प्पटकप्रियङ्गु- ८.१
दुष्टव्रणारुःकिटिभापहारि ३७.४
दूर्वाभया-सैन्धव-चक्रमर्द- ३६.१
दूर्वारसो दाडिमपुष्पजो वा ३४.१
दोषाः प्रवृद्धा युगपत्त्रयो वा ८९.२
दोषाप्रवृत्त्याकुलमूत्रताभिः ९४.२
दृष्ट्वैतान् कथमचिकित्सकोऽपि युञ्ज्या- ८५.३
द्राक्षाभयापर्प्पटकाब्दतिक्ता- ६.१

द्राक्षा-यवानी-त्रिफलाकषाय: ५५.२

धात्रीचूर्णस्य कंसं स्वरसपरिगतं क्षौद्रसर्पि:समांशं ७६.१

धात्रीफलं सर्जरस: सपाक्य: ३५.१

धूमात्युष्णशिरोविरेकवमनस्वेदोपवासादिकं १८.३

नक्तान्धतां गोशकृता च कृष्णा ४९.२

नतमधुककरञ्जलाक्षापटोलीसमङ्गावचापाटली- ७२.१

नस्यं विदध्याद् गुडनागरं ८४.१

नस्यं विधेयं पवनासृगुत्थे ४५.२

नस्यं श्रेष्ठं व्याधिषु चोर्ध्वेष्वपरेषु ६०.४

नागेन्द्रद्विजशृङ्गहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैश्च धूप: कृत: ७०.३

नादेयी-कुटजार्क-शिग्रु-बृहती-स्नुग्-बिल्व-भल्लातक २४.१

नानाप्रकारामयनीडभूतं १०३.३

निदिग्धिकानागरकामृतानां ७.१

निरामदेहस्य हि भेषजानि २.३

निवारयत्यास्यविधारितेयं ३१.३

निशा सयष्टीमधुपद्मकोत्पलै: ६२.१

न्निरत्ययं योज्यमथामयघ्नम् ८१.४

न्निर्व्याधिर्बुद्धिमेधास्मृतिवचनबलस्थैर्यसत्त्वैरुपेत: ७६.४

न्यस्येत् खण्डे विपक्वे समरिचमगधा-शुण्ठ्यजाजी-त्रिगन्धै: ४३.२

पक्त्वा च तैलं कटुकं निषिञ्चेत् ५७.३

पक्वं तैलं तै: सपयस्कैस्तिमिरघ्नं ६०.३

पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा २९.२

पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजै:- ४६.१

परिश्रमस्वेदविदाहराग- ९१.१

परीक्ष्य हेत्वामयलक्षणानि २.१

पाठा तिक्ता तेजनी पीतिका च ५६.२
पाण्ड्वामये दूरगतेऽपि शस्तः ३०.४
पानाहारविहारभेषजमिदं वातं प्रशान्तिं नयेत् ९६.४
पानाहारविहारभेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं जयेत् ९८.४
पानाहारविहारभेषजमिदं पित्तं प्रशान्तिं नयेत् ९७.४
पारुष्य-सङ्कोचन-तोद-शूल- ९०.१
पाषाणभित्त्रिकटमूलकृतः कषायः १९.२
पाषाणभिद्धन्वयवासकानाम् १६.२
पिण्डीतकृष्णाबिडधूमकुष्ठैः ४४.२
पित्तं तथा मधुरतिक्तकषायशीतैः १०१.२
पित्तं प्रकोपमुपयाति घनात्यये च ८७.४
पित्तस्य कर्माणि विदन्ति तज्ज्ञाः ९१.४
पित्तस्य वर्षान्तनिदाघयोश्च १००.२
पित्तासृक्प्रभवेषु सर्वतिमिरेषूर्ध्वेषु च व्याधिषु ५९.४
पिबेज्जलेन क्वथितां समांशाम् ११.२
पिबेत् कषायं मधुसम्प्रयुक्तं ९.३
पिबेत् समूत्रा महिषाक्षयुक्ताः १२.२
पिष्टैस्तु माक्षिकरसेन रसक्रियेयं ५०.३
पुनर्नवादार्वभयागुडूचीः १२.१
पुष्पाह्वाघनबिल्वकुष्ठफलिनीकृष्णावचाकल्कितो ८२.३
पुष्पाख्य-ताक्ष्र्यज-सितोदधिफेनसर्ज- ५०.१
पुष्पोद्भूतं यच्च बृहत्यास्तगरञ्च ६०.२
पूतीकपत्र-गजचिर्भिट-चव्य-वह्नि- २२.१
पेयं तथा यवरसेन च विड्-विबन्धे २०.४
पेयं पुराणज्वरकासशूल- ४०.३

प्रत्येकपक्वमनुवासनमीरणघ्नम्	८३.५
प्रपिबन्निदं जयति कुष्ठमातुर:	४२.४
प्रमदानां प्रियतां च गच्छति	७७.४
प्रयोजयेदञ्जन-पान-नावनै:	६४.३
प्रलापमूर्छाभ्रमदाहशोष-	६.३
प्रलापमूर्छाभ्रमपीतभावान्	९१.३
प्रलिहन् क्षीरमनु प्रयोजयेत्	७७.२
प्राप्तं मया पुण्यमनुत्तमं यत्	१०३.२
प्रियङ्गुकाशाबरलोध्रचन्दनै:	६२.२
फलत्रिकं दारुनिशां विशालां	९.१
बदरकटुफलत्रिकाकाण्डदारुकृमिघ्नाजगन्धामरा-	७२.२
बहि: प्रलेपं नयनस्य कुर्यात्	४७.३
बालेषु योज्यावतिसारितेषु	७४.४
बुद्ध्वैतदन्यदपि यद्यदनुक्तमत्र	१०२.१
बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां	७४.१
भवन्ति युक्तान्यमृतोपमानि	२.४
भवन्ति सिध्मानि यथा न	३५.३
भवेज्जराव्याधिविनाशनी च	७८.४
भार्ङ्गी: सपुष्करजटा लवणानि पञ्च	२३.२
भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं	२१.३
भुञ्जीत मन्दाग्निरपि प्रभूतम्	२८.४
भूतरावाह्वयं पानतस्तद् ग्रहघ्नं प्रसिद्धं परम्	७१.४
भूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम्	८.२
भूयस्तथेदमुद्वर्त्तनकं करोति	३५.४
भ्रूकर्णशङ्खाक्षिशिरोऽर्द्धशूले	४५.३

मक्ष्णोर्जयेत् कष्टमपि प्रकोपम् ४६.४

मधुकं मधुना घृतेन च ७७.१

मनश्शिलामागधिकोषणानां ३२.१

मन्दानलत्वे सततामताया- ११.३

मभ्यञ्जनाच्छीतविदाहजित् स्यात् ३९.४

मभ्यञ्जनेन सकृदुद्धरति प्रसह्य ३८.४

मयूरपित्तेन च तण्डुलीयं ६६.१

मांसी-चन्दन-शङ्खपत्र-गिरिमृत्तालीस-पुष्पाञ्जनैः ५२.२

मांसीरसैर्गुग्गुलुसैन्धवैश्च ५७.२

मांसीसेव्यालकौन्तीजलजलदशिलारोचनापद्मकेशी- ६८.१

मामानुबन्धे ग्रहणीगदे च ११.४

मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान् १३.३

माषक्वाथयुतः सतैललवणक्षौद्रः ससर्पिर्गुडः ८२.२

मञ्जिष्ठा रजनीद्वयं त्रिकटुकं श्यामावचाहिङ्गु च ६९.२

मञ्जिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः ६३.२

मञ्जिष्ठा-मधुकोत्पलोदधिकफ-त्वक्-सेव्य-गोरोचना- ५२.१

मुखस्य पाकं शमयत्युदीर्णम् ५५.४

मुस्ताञ्च निष्क्वाथ्य निशांशकल्कम् ९.२

मुस्ताखुकर्णीफलदारुशिग्रु- १३.१

मुस्ताटरूषकमहौषधधन्वयासैः ३.३

मुस्तोशीररजो यवाः समरिचं सिन्धूद्भवं कट्फलम् ५१.१

मूलानुगां मगधजां त्रिगुणां च शुण्ठीम् २६.२

मैरण्डतैलेन पिबन् कषायम् १७.२

यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य सम्यग्- १५.३

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां ५४.१

यष्टीकषायो लवणाग्र्ययुक्तः ८०.१
यष्टीतुगासैन्धवपिप्पलीभिः ७८.१
युक्त्या स्वयं समधिगम्य यथानुरूपम् १०२.२
युञ्ज्यात्तद् व्रणदुष्टिषु व्रणरुजास्वर्शस्सु नाडीषु च ६१.३
रक्तस्रावं हन्ति कण्डूरुजश्च ५६.४
रसाञ्जनं तन्दुलकस्य मूलं १८.१
रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम् ५४.२
रसाञ्जनं व्योषयुतं च पिल्लं ४९.३
रामः प्रशान्तिमुपयात्यपतर्पणेन १०१.४
रामान्वितं व्याधिमुदाहरन्ति ९४.४
रास्नाराठफलत्रयामृतलतायुक्पञ्चमूलीबला- ८२.१
रूक्षक्षारकषायतिक्तकटुकव्यायामनिष्ठीवनं ९८.१
रोगेषु भेषजमनल्पमतिर्विदध्यात् १०२.३
लघ्वन्नसूपौदनतिक्तयूषैः ९५.२
लभतेऽपि च नात्मनः क्षयं ७७.३
लाक्षा-निशा-लोहितयष्टिकाभिः ३९.२
लाजैस्समांशं मधुनावलीढं ३२.३
लिहन् ससर्पिर्मधुभागयुक्तम् ७९.२
लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् ७५.२
लेहोऽयं बालवृद्धानिलरुधिरि-कृश-स्त्रीप्रसक्तिक्षतानां ४३.३
वटप्ररोहं मधु कुष्ठमुत्पलं ३३.१
वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात् २९.४
वर्त्तिं कराङ्गुष्ठनिभां घृताक्तां ४४.३
वर्षान्ते तत्समश्नन् भवति विपलितो रूपवर्णप्रभावा- ७६.३
वस्तिः काञ्जिकदुग्धमूत्रसहितो वातामयेभ्यो हितः ८२.४

वातात्मके वस्तिमुदाहरन्ति ९९.३
वातोऽम्लतैललवणैर्मधुरान्नपानैः **१०१.१**
वायुः प्रकोपमुपयाति घनागमे च ८६.४
वासा-गुडूची-चतुरङ्गुलाना- **१७.१**
वासानिम्बपटोलपर्पटफलश्रीमुस्तदार्व्यम्बुदै- **५८.१**
वासामुष्ककपाटलासलवणान् दग्ध्वा रसं पाचितं २४.३
विण्माक्षिकाणां च निहन्ति हिक्काम् ३४.४
विदग्धवैद्यप्रतिपूजितस्य १.३
विपाच्य तैलं पयसा प्रयोजयेत् ६२.३
विपाच्य मूत्राम्लमधूनि दन्ती- **४४.१**
विमोहितानामपि सर्पदंशिनाम् ६४.४
विरूक्षण-स्वेदन-पाचनैश्च ९५.३
विरेचनं पित्तभवे विकारे ९९.२
विरेचनं सोरुबुतैलमेत- ८१.३
विषाणि सस्थावरजङ्गमानि ६७.४
विषाण्यसौ स्थावरजङ्गमानि ६६.३
वृषखदिरपटोलनिम्बपत्र- **४१.१**
वृष्यः स्थिरः शान्तविकारदुःखः ७९.३
वैगन्ध्यसंक्लेदविपाककोपान् ९१.२
वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् २५.४
व्याघ्री-किंशुक-पारिभद्रकजटापामार्ग-नीपाग्निकान् २४.२
व्यायामयानकटुतिक्तकषायरूक्षैः ८६.२
व्योषं च संस्तरचितं लवणोपधानम् २२.२
व्योषैर्गुडांशैर्गुडकान् प्रकुर्यात् २८.२
शस्तं छागलमूत्रपिष्टमगदं सर्वग्रहोच्चाटनं ६९.३

शास्त्रं हि किञ्चिदुपदेशबलं करोति	१०२.४
शिरीषपुष्पस्वरसेन भावितं	६४.१
शिरोऽक्षिरोगश्रवणामयेषु	८४.४
शुक्लैरण्डान्मूलमथोग्रा शतपुष्पा	६०.१
शुण्ठ्यम्बुना कफसमीरणसम्भवासु	२०.२
शुण्ठीं समुस्तातिविषां गुडूचीं	११.१
शुण्ठी-कणा-मरिच-नागदल-त्वगेलं	२७.१
शृङ्गी च यष्टीमधुकं च तुल्यम्	७३.२
शृङ्गीं सकृष्णातिविषां विचूर्ण्य	७५.१
शृङ्गीकटुत्रिक-फलत्रय-कण्टकारी-	२३.१
श्चिकित्सिताद्विप्रसृतस्य दूरम्	१.२
श्यामत्व-पाण्डुत्वमथाङ्गपीडा:	९०.२
श्रेष्ठो गलव्याधिषु सर्वजेषु	५३.४
श्रोण्यंस-मेढ्र-हृदय-स्तनरुक्षु पेय:	१९.४
श्लेष्मा प्रकोपमुपयाति तथा वसन्ते	८८.४
श्लेष्मापि तिक्तकटुरूक्षकषायतीक्ष्णै-	१०१.३
श्वासं च भार्गी सह नागरेण	१८.४
श्वासं प्रवृद्धं प्रबलं च कासम्	३१.४
श्वासाग्निमान्द्यग्रहणीगदेषु	४०.४
श्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु	७.४
श्वासोर्ध्ववातकसनारुचिपीनसेषु	२३.४
श्वेतत्वशीततत्वगुरुत्वकण्डू-	९२.१
सञ्ज्ञान्तरं येन तु सम्प्रयान्ति	९३.४
संख्यानसञ्ज्ञातिगताननेकान्	८९.४
संशोधनैरूर्ध्वमधस्तथा च	९५.४

संसर्गजे तु व्यतिमिश्रमेतत्	९९.४
सक्षारहिङ्गुलवणोरुबुतैलमिश्रः	१९.३
सक्षौद्रमेतद् वमनं प्रयोज्यं	८०.३
सगैरिकैः स्वच्छजलेन पिष्टैः	४७.२
सद्योद्भवं वायुरिवाभ्रवृन्दम्	६५.४
सन्धारणाध्यशनजागरणोच्चभाष्य-	८६.१
समाः शतं जीवति कृष्णकेशः	७९.४
समाक्षिका सा वदने विधारिता	३३.३
समाक्षिकां चातिविषामथैकाम्	७५.४
सर्पिः सिद्धमथोर्ध्वजत्रुविकृतिघ्राणाक्षिशूलादिषु	५८.३
सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो	६३.३
सर्पिःक्षीरविरेकसेकरुधिरस्रावप्रदेहादिकं	९७.३
सर्पिर्गुडूचीवृषकण्टकारी-	४०.१
सर्वप्रमेहेषु समुत्थितेषु	९.४
सर्वाक्षिरोगप्रशमार्थमेतम्	४७.४
सर्वातिसारेषु च सर्वदेष्टः	७३.४
सर्वामयानामपि नैकनाम्नाम्	९३.२
सलाजचूर्णं गुटिकां प्रकल्पयेत्	३३.२
सर्वैः समं माक्षिकधातुचूर्णम्	३०.२
सर्वैरेव समांशमनञ्जनमिदं शस्तं सदा चक्षुषोः	५२.३
सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः	१०.१
सवाजिगन्धोऽन्विततण्डुलीयः	६७.२
सशर्करं कुंकुममाज्यभृष्टं	४५.१
सशर्कराभिस्त्रिफला प्रयुक्ता	७८.२
सशर्करे साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे	१४.४

सश्वासकासारुचिपार्श्वरुक्करे	४.३
ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं	४८.१
ससैन्धवां मागधिकामथो वा	८४.२
सामे सशूले कफवातयुक्ते	५.३
सामे सशूले च सशोणिते च	१०.३
सितलशुनफलत्रिकोशीरतिक्तावचा-	७१.२
सिद्धं पयोदधितुषोदकमस्तुचुक्रैः	८३.२
सिद्ध्यर्थं विनिगदिता भिषग्वराणाम्	८५.२
सिद्धार्थत्रिफलाशिरीषकटभीश्वेताकरञ्जामरं	६९.१
सिन्दूर-गुग्गुलु-रसाञ्जन-सिक्थ-तुत्थैः-	३८.१
सिन्धूत्थ-गैरिक-शिला-मरिचैः समांशैः	५०.२
सिन्धूत्थहिङ्गुत्रिफलायवानी-	२८.१
सुप्तत्व-शीतत्व-खरत्व-शोषान्	९०.३
सुवर्चिका-नागर-कुष्ठ-मूर्वा-	३९.१
सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः	१०.२
सोपद्रवाण्यप्यचिरेण हन्ति	६६.४
सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम्	४८.२
सौवीरपिष्टश्च तदासुतश्च	३५.२
सौवीर-शुक्तार्द्रक-मातुलुङ्ग-	५७.१
स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नः स्मृतः	७०.४
स्तन्येन वालक्तरसेन वापि	३४.३
स्तिक्तोशीरदुरालभा-त्रिकटुक-त्रायन्तिकाचन्दनैः	५८.२
स्त्रीसेवाध्वनियुद्धजागरजलक्रीडापदाघातनम्	९८.२
स्त्वग्वांशीवृकदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोचनैः	७०.२
स्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफामयेषु	१२.४

स्नानाभ्यञ्जनबस्तिमांसमदिरासंवाहनोन्मर्दनम् ९६.२
स्निग्धातितृप्तिलवणोदकपानभक्षैः ८८.३
स्निग्धोष्णस्थिरवृष्यबल्यलवणस्वाद्वम्लतैलातप- **९६.१**
स्नेहस्वेदनिरूहनस्यशयनस्थानोपनाहादिकं ९६.३
स्नेहोपदेहस्तिमितत्वलेपान् ९२.२
स्पृक्काचण्डाहरिद्रागदसितपलितासृग्लतापद्मकैलाः ६८.२
स्वप्नाद्दिवामधुरशीतलमत्स्यमांसैः- **८८.१**
हन्त्यन्धतां च तिमिरार्जुनवर्त्मरोगान् ५०.४
हन्त्यर्जुनं शर्करयाब्धिफेनो **४९.१**
हरीतकी-गोक्षुर-राजवृक्ष- **१६.१**
हरीतकी-नागरमुस्तचूर्णैः- **३१.१**
हरीतकी-पुष्करमूल-कुष्ठम् २१.२
हरीतकीभिः क्वथितं सुवीरं **८१.१**
हरीतकीभिः क्वथितः कषायः ५.२
हरीतकी-सैन्धव-तार्क्ष्यशैलैः **४७.१**
हिंगूग्रगन्धा-विड-शुण्ठ्यजाजी- **२१.१**
हिंग्वादिप्रतिवापमेतदुचितं गुल्मोदराष्ठीलिषु २४.४
हेमन्तवर्षाशिशिरेषु वायोः **१००.१**
हृत्पार्श्वपृष्ठजठरार्त्तिविषूचिकासु २०.३

।। इति योगशत-श्लोकचरणानुक्रमणिका ।।

परिशष्ट- ७.

सन्दर्भग्रन्थ-सूची

अष्टाङ्गहृदयम्- (वाग्भट), सम्पादक- पं. हरि सदाशिव शास्त्री पराडकर, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी- १. पुनर्मुद्रण वि.सं. २०६७.

अष्टाङ्गसंग्रहः- (वाग्भट), अनुवादक- अत्रिदेव गुप्त, चौखम्भा कृष्णादास अकादमी, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित २००५. ई.

कैयदेव-निघण्टुः- सम्पादक/अनुवादक- प्रियव्रत शर्मा, चौखम्भा ओरियण्टालिया, गोकुल भवन, के.३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-१, पुनर्मुद्रित २००९. ई.

गदनिग्रह (सोढल-विरचित– सम्पादक- इन्द्रदेव त्रिपाठी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी-१, पुनर्मुद्रण-२०११ ई.

चक्रदत्तः- (चक्रपाणिदत्त), सम्पादक- इन्द्रदेव त्रिपाठी, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी-१, पुनर्मुद्रण-२०११ ई.

चक्रदत्त-रत्नप्रभा-(निश्चलकर), सम्पादक- प्रियव्रत शर्मा, स्वामी जयरामदास, रामप्रकाश ट्रस्ट, अनाज मण्डी जौहरी बाजार, जयपुर-३०२००३. प्रथम संस्करण- १९९३ ई.

चरकसंहिता- सम्पादक- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, चौखम्भा ओरियण्टालिया, बंग्लो रोड़, ९- यू.बी. जवाहरनगर, दिल्ली-७, प्रथम संस्करण-२००४ई.

धन्वन्तरिनिघण्टु- सम्पादक- आचार्य प्रियव्रत शर्मा, चौखम्भा ओरियण्टालिया, गोकुल भवन, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी- १, पुनर्मुद्रित संस्करण- २००८ ई.

भैषज्यरत्नावली (गोविन्ददाससेन-विरचित)- प्रो. सिद्धिनन्दन मिश्र, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण- २०११ ई.

योगचिन्तामणि (हर्षकीर्त्ति- विरचित)- अनुवादक- कन्हैयालाल पाठक, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग मुम्बई- ४. पुनर्मुद्रण- दिसम्बर २०१३ ई.

योगशतक- सम्पादक- जान फिल्लियोजा, फ्रेंच इन्स्टीट्यूट, पाण्डिचेरी, प्रथम संस्करण १९७९ ई.

योगशतकम्- सम्पादक- एच. पी. मल्लदेवरु, प्राच्यविद्या-संशोधनालय मैसूरु (कर्नाटक), प्रथम संस्करण १९८५ ई.

योगरत्न-समुच्चय-(चन्द्रट-प्रणीत), सम्पादक- आचार्य बालकृष्ण, पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार- २४९४०२. (प्रकाशनाधीन)

योगरत्न-समुच्चय- (अनन्तकुमार-प्रणीत), प्रथम भाग, सम्पादक- एस. धन्वन्तरिदास सी. एन. नारायणन् मूस, अनन्तशयन राजकीय मुद्रण यन्त्रालय, तिरुवनन्तपुरम् (केरल), प्रथम संस्करण- १९४० ई.

योगरत्न-समुच्चय- (अनन्तकुमार-प्रणीत), द्वितीय भाग, सम्पादक- धन्वन्तरिदास सी. एन. नारायणन् मूस, अनन्तशयन राजकीय मुद्रण यन्त्रालय, तिरुवनन्तपुरम् (केरल), प्रथम संस्करण- १९४० ई.

योगरत्न-समुच्चय- (अनन्तकुमार-प्रणीत), तृतीय भाग, सम्पादक- रामस्वामी शास्त्री, अनन्तशयन राजकीय मुद्रण यन्त्रालय, तिरुवनन्तपुरम् (केरल), प्रथम संस्करण- १९४७ ई.

योगरत्नाकर- (अज्ञातकर्तृक) सम्पादक- कृष्णशर्मा नवरे, निर्णय-सागर मुद्रणालय मुम्बई, संस्करण- १९०७ ई.

वृत्तरत्नाकर- (केदारभट्ट-विरचित), काशिनाथ पाण्डुरङ्ग परब, निर्णयसागर मुद्रणालय मुम्बई, १८९० ई.

शालिग्रामौषधशब्दसागर- शालिग्राम वैश्य, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, खेमराजश्रीकृष्णदास मार्ग, मुम्बई- ४००००४., संस्करण नवम्बर- २००४ ई.

सिद्धसार-संहिता- (रविगुप्त-विरचिता), हिन्दीव्याख्याकार- आचार्य बालकृष्ण, दिव्य प्रकाशन, पतञ्जलि योगपीठ ट्रस्ट, हरिद्वार- २४९४०२, प्रथम संस्करण अगस्त २०१४ ई.

सुश्रुतसंहिता- सम्पादक- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी-१; २०१२ ई.

ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन मैडिसन लिट्रेचर- जी. जान म्यूलनबल्ड, जे. गोण्ड फाउन्डेशन, रायल नीदरलैण्ड एकेडमी ऑफ आर्ट एण्ड साइन्स, संस्करण- २००० ई.

शब्दसंक्षेप-सूची

अ.सं.सू.	अष्टांग-संग्रहः, सूत्रस्थानम्
अ.हृ. सू.	अष्टांग-हृदयम्, सूत्रस्थानम्
अ.सं.चि.	अष्टांग-हृदयम्, चिकित्सास्थानम्
अ.सं.उ.	अष्टांग-हृदयम्, उत्तरस्थानम्
कै. नि.	कैयदेव-निघण्टु
च.सं.	चरकसंहिता
प.सं.	पद्यसंख्या
सिद्ध.सं.	सिद्धसार-संहिता
सु. सं.	सुश्रुतसंहिता
देव.	देवनागरी
क्र.	क्रमांक

पाठान्तर-शब्दसंक्षेप-सूची

(योगशत-पद्यों के पाठान्तर-प्रदर्शन में प्रयुक्त संकेत)

१. **अ.**- योगशतम्- प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान अलवर - हस्तलेख क्र. ५२४२.

२. **आ.**- आनन्द आश्रम पुणे से प्राप्त हस्तलेख- प्रथम,

३. **इ.**- इन्स्टीट्यूट फ्रेंच इण्डोलॉजी पाण्डिचेरी से प्रकाशित संस्करण - १९७९ ई.

४. **क.**- यादवराव शर्मा, ग्राम- कन्दकृत्ति, निजामाबाद से प्राप्त हस्तलेख

५. **च-र.**- चक्रदत्त रत्नप्रभा (निश्चलकर-रचित), सम्पादक- आचार्य प्रियव्रत शर्मा, संस्करण- २०५० वि., (स्वामी जयरामदास रामप्रकाश ट्रस्ट, अनाज मण्डी, जौहरी बाजार- ३०२००३)

६. **ज.**- रघुनाथ मन्दिर हस्तलेखागार जम्मू से प्राप्त हस्तलेख (क्रमांक- ३१०६)

७. **जै.१** - जिनभद्रसूरि हस्तलिखित ग्रन्थभण्डार, जैसलमेर दुर्ग (राजस्थान), प्रथम प्रतिलिपि- ग्रन्थांक- २२२८.

८. **ति.**- प्राच्यविद्या संशोधनालय (ओ.आर.आई.), कार्यवट्टम्, तिरुवनन्तपुरम्, केरल विश्वविद्यालय से प्राप्त योगशतम्- क्रमांक-९७४३, अमितप्रभ- (देवनागरी) पत्र- १३, पूर्ण।

९. **ब. ४** - प्राच्यविद्या-मन्दिर बडौदा (गुजरात), हस्तलेख क्रमांक- ९०५९.

१०. **भो.१-८** भो. जे. अध्ययन-संशोधन भवन, आश्रम मार्ग, अहमदाबाद (गुजरात) से प्राप्त हस्तलेख १-८;

११. **मै.**- मैसूर-संस्कण, प्राच्यविद्या-संशोधनालय मैसूर, संस्करण १९८६ ई.;

१०. **रू.**- रूपनयनटीका युक्त हस्तलेख, प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान जोधपुर (राजस्थान) से प्राप्त (क्रमांक-१५६२)

....

शुभ-सम्मति

आचार्य **'अमितप्रभ'** द्वारा ७वीं शती में रचित 'योगशत' नामक पुस्तिका आयुर्वेद की प्राचीन एवं अति महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें ग्रन्थकार ने अपने सुदीर्घ चिकित्सकीय अनुभव एवं आयुर्वेद के गहन अध्ययन के आधार पर लगभग १०० श्लोकों में ही बहुत सरल व सरस शैली में विशाल आयुर्वेद-सागर का सारभूत अमृततत्त्व प्रस्तुत कर दिया है। इसमें संक्षिप्त किन्तु प्रामाणिक रूप से किया गया आयुर्वेदीय चिकित्सा एवं मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन बहुत ही सुगम व सर्वजनोपयोगी है। आयुर्वेद-मनीषी **आचार्य श्रीबालकृष्ण जी** ने चिरकाल से उपेक्षित इस ग्रन्थरत्न का अनेक पुरातन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर उत्तम सम्पादन कर पहली बार हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन किया है, जो आयुर्वेद-जगत् के लिए विशेष रूप से उपादेय एवं स्पृहणीय है।

इस पुस्तक में आयुर्वेद के काय-चिकित्सा आदि आठों अंगों के अन्तर्गत चिकित्सा हेतु ऐसे उत्तमोत्तम चयनित योग (नुस्खे) प्रस्तुत किए हैं, जो अत्यन्त प्रभावशाली हैं तथा जिन्हें सरलता से ग्रामीण क्षेत्र में ही बनाया जा सकता है। ये योग अति प्राचीन काल से सुपरीक्षित हैं तथा वैद्य-समाज में परम्परागत रूप से प्रचलित एवं सुप्रसिद्ध हैं। हजारों वर्षों से वैद्यजन निरापद रूप से इनके द्वारा चिकित्सा करते आ रहे हैं।

चिकित्सा-विधि के साथ ही इस पुस्तक में स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य-रक्षण हेतु वात, पित्त, कफ के स्वरूप, प्रकोप के कारण एवं प्रशमन के उपायों की जानकारी दी गई है, जो प्रत्येक आरोग्याभिलाषी के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसमें त्रिदोष के शोधन हेतु पञ्चकर्म का भी निरूपण किया है, जो आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति का एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली अंग है।

सामान्य जन भी इस संक्षिप्त एवं सरल पुस्तक को पढ़कर आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति एवं सिद्धान्तों से भली-भांति परिचित हो सकते हैं तथा तदनुसार अपने जीवन को स्वस्थ व सुखी बना सकते हैं। **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।** सभी के सुखमय आरोग्य की मंगलकामना के साथ—

आपका
स्वामी रामदेव

दिव्य प्रकाशन
पतञ्जलि योगपीठ
महर्षि दयानन्द ग्राम, दिल्ली-हरिद्वार राष्ट्रीय राजमार्ग
निकट बहादराबाद, हरिद्वार-249402 (उत्तराखण्ड)